Nagari-pracharini Granthmala Series No.

THE PRITHVIRÁJ RÁSO

OF

CHAND BARDÁI,

VOL. I.

EDITED

BY

Mohanlal Visnulal Pandia, Radha Krishna Das

AND

Syam Sundar Das, B. A.

CANTOS I. To XI.

महाकवि चंद बरदाई

कृत

पृथ्वीराजरासो

भाग पहिला

जिसको

मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, राधाकृष्णदास

और

श्यामसुन्दरदास बी. ए.

ने

सम्पादित किया।

पर्व्व-१ से ११ तक।

PRINTED AT THE MEDICAL HALL PRESS, BENARES.

1904.

[Price Rs.

सूचीपत्र ।

(१) आदि पर्व्व ।

(पृष्ठ १ से १८० तक)

पृष्ठ ।

पृष्ठ ।

(२) दसम समय ।

(पृष्ठ १८१ से २५४ तक)

---

(३) दिल्ली किल्ली कथा ।

(पृष्ठ २५५ से पृष्ठ २७४ तक)

---

(४) लोहानो आजान बाहु समय ।

(पृष्ठ २७५ से पृष्ठ २८० तक)

---

(५) कन्हपट्टी समय ।

(पृष्ठ २८१ से पृष्ठ २८८ तक)

[६] आखेटक वीर ...

(पृष्ट २९९ से

पृष्ठ

[७] नाहर राय कथा वर्णन

(पृष्ठ ३२९ से पृष्ठ ३६८ तक)

पृष्ठ

[८] मेवाती मुगल कथा ॥

(पृष्ठ ३६९ से पृष्ठ ३८४ तक)

(९) हुसेन कथा ॥

(पृष्ठ ३८५ से पृष्ठ ४२४ तक)

---

(१०) आषेटक चूक वर्णन ।

(पृष्ठ ४२५ से ४३८ तक)

---

[११] चित्र रेषा समय ।

(पृष्ठ ४३९ से ४४५ तक)

वीरशिरोमणि महाराज पृथ्वीराज ।

Indian Press, Allahabad.

पृथ्वीराजरासो।

अथ आदि पर्व्व लिख्यते।

(पहिला समय)

आदिदेव, गुरू, वाणी, लक्ष्मीश, सुरनाथ और सर्वेश का मंगलाचरण ॥

साटक–ॐ॥ आदी देव प्रनम्य नम्य गुरयं, वानीय वंदे पयं।
सिष्टं धारन धारयं वसुमती, लच्छीस चर्नाश्रयं ॥
तं गुं तिष्टति ईस दुष्ट दहनं, सुर्नाथ सिद्धिश्रयं।
थिर्चर्जंगम जीव चंद नमयं, सर्वेस वर्दामयं॥ छंद ॥ १ ॥ रूपक ॥ १ ॥

---

१ यह मंगलाचरण जिस छंद में चंद कवि ने कहा है उसका नाम उसने सांटक प्रयोग किया है और इस नाम से यह छंद आज कल जो छंद ग्रंथ प्रायः उपलब्ध हैं उनमें नहीं मिलता। यद्यपि उसकी परीक्षा करने से वह निःसंदेह शार्दूलविक्रीडित् नामक छंद मालूम होता है परंतु जब तक उसका लक्षण अथवा नामान्तर होने का कोई प्रमाण नहीं दिखलाया जाय तब तक पुरातत्त्ववेत्ता विद्वान संतुष्ट नहीं हो सकते। अतएव बहुत खोज करने से गुजराती भाषा के काव्यों में इस नाम के छंद मिले और The Revd. J.seph Vān. S. Taylor साहब अपने गुजराती भाषा के व्याकरण के पद्यबंध अथवा छंदविन्यास नामक प्रकरण के पृष्ठ २२३ में उसको साटक नाम से कुल ३८ अक्षर के दो तुक का छंद होना लिखते हैं कि जिसके प्रत्येक तुक में १२+७=१९ अक्षरे होते हैं। इसके सिवाय प्राकृतभाषा के किसी छंदग्रंथ से अनुवादित होकर सं· १७७६ में जो एक रूपदीप पिंगल नामक छंद ग्रंथ बना है उसमें केवल ५२ छंदों के लक्षण कहे हैं। उसमें भी साटक का यह लक्षण लिखा है–

साटक छंद लक्षण ॥

कर्मै द्वादश अंक आद संग्या, मात्रा सिवो सागरे।
दुज्जी बी करिके कलाष्ट दस बी, अर्को विरामाधिकं ॥ १ ॥
अंते गुर्व निहार धार सब के, औरों कछू भेद ना।
तीसों मत्त उनीस अंक चरने, सेसो भणौं साटिकं ॥

हम इस साटक छंद का पिंगल छंद सूत्रम् नाम्नक ग्रंथ में कहे शार्दूलविक्रीडित् छंद का नामान्तर होना मानते हैं और उसका लक्षण बहुत प्राचीन अमर और भरत कृत छंद ग्रंथों में अवश्य होना अनुमान करते हैं क्योंकि चंद्र कवि ने भी अपने इसी ग्रंथ के आदि पर्व के रूपक ३७ में जो कुछ कहा है उससे स्पष्ट मालूम होता है कि उसने अपने इस महाकाव्य की रचन में पिंगल अमर और भरत के छंद ग्रंथों का आश्रय लिया है॥

इस छंद के लक्षण का पता लगा कर अब हम इस रूपक के पाठ को शोधते हैं। उस की पहिली पंक्ति का पाठ A. S. B की छापी हुई पुस्तक की Fasciculus I जिस को Mr. John Beames साहब ने शोध कर छपाया है उस में "आदि् प्रनम्य नम्य गुरयं वानीय वंदे पयं ऐसा पाठ है और जो Mr. F. S Growse, C. S., M. A. ने रासो के प्रारंभ के छंदों का अनुवाद करने में पाठ लिखा है वह भी ऐसा ही है। निदान साटक के लक्षण के अनुसार इस तुक में १२+७=१९ अक्षर होने चाहिए परंतु उस में १०+७=१७ अक्षर हैं। अब यह अत्यावश्यक है कि घटते हुए दो अक्षरों का पता लगाया जाय। यह कल्पना करनी कि चंद कवि अथवा उसके नाम से कोई यह जाली ग्रंथ बनानेवाला छंद ग्रंथों में भले प्रकार व्युत्पन्न न होने के कारण मूल में ही भूल गया है सर्वरीत्या अयोग्य और आश्चर्यदायक बात है। क्योंकि वर्तमान् पृथ्वीराजरासो का बिगड़ा हुआ काव्य भी अपने कर्त्ता का एक बड़ा व्युत्पन्न कवि होना स्वयम् स्पष्ट प्रकाश करता है अतएव उसका ऐसी भूलों का करना निर्मल प्रज्ञावाले विद्वानों के ध्यान में सर्वथा असंभव है।

इस प्रथम तुक में जो दो अक्षर घटते हैं वे पंक्ति भर में किस स्थान में लेखक अथवा शोधक की भूल से लोप हो गए हैं इस बात की शोध लेने के लिये यह एक बड़ी सरल युक्ति है कि हम इस तुक के अर्थ को ध्यान में लेकर उसके वाक्यखंडों को पृथक् पृथक् कर दें कि जिस से अपूर्ण वाक्यखण्ड अपने आप हम को घटते हुए अक्षर बतला देवे जैसे कि वानीय वंदे पयं और नम्य गुरयं और आदि् प्रनम्य ऐसा करने से हम को मालूम हो गया कि आदि प्रनम्य वाक्य खंड अपूर्ण है और उसमें कोई संज्ञावाचक शब्द घटता है। अब विचारना चाहिए कि वह संज्ञा वाचक शब्द आदि् शब्द के पहिले घटता है अथवा पीछे। जो हम आदि् शब्द के पहिले उस का होना मानें तो 'आदिः पदान्ते गंण सूचकः" से दोष प्राप्त होकर हमारी कल्पना अन्यथा हो जाती है अतएव मानना चाहिए कि आदि् शब्द के पीछे कोई संज्ञावाचक शब्द है क्योंकि ऐसा मानने में आदि् शब्द उस शब्द के साथ मिलकर हम को कर्म्मधारय समास का होना स्पष्ट विदित कराता है। जब कि यह निश्चय हो गया कि आदि् शब्द के पीछे अर्थात् आदि् और प्रनम्य के बीच में कोई संज्ञावाचक शब्द गया है तब हम को फिर सूक्ष्म विचार में निमग्न होना चाहिए कि वह संज्ञावाचक शब्द कौन सा है कि जिसको चंद कवि ने प्रयोग किया था। हम निःसंदेह कल्पना करते हैं कि यहां देव शब्द था अर्थात् आदी देव ऐसा पाठ चंद ने प्रयोग किया था क्योंकि प्रथम तो "आदिः कारणं स च देवश्चेति कर्म्मधारयः" तथा जगदुपादानादि गुणवान् नारायणः" दूसरे आदिदेव शब्द हमारी संस्कृतभाषा के प्रामाणिक ग्रंथों के मंगलाचरणों तथा ईश्वर की स्तुति तथा ईश्वर के ध्यान के वाक्यों में बहुधा प्रयोग किया गया है कि हम उदाहरण के लिये केवल दोही प्रमाण यहां दिखाते हैं जैसे–"परं ब्रम्ह परं धाम। पवित्रं परमं भवान्॥ पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुं" तथा "त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानं"॥ तीसरे चंद कवि ने स्वयम् अपने इस महाकाव्य में इस आदि देव शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों में किया है जैसा किः- "प्रनम्य प्रथम मम आदि

देव ऊँकार शब्द जिन करि अछेव"॥ चौथे इस तुक में प्रथम मगण होने के कारण तीनों अक्षर दीर्घ होने चाहिए अतएव कवि ने आदी देव ऐसा पाठ कहा है आदि शब्द संस्कृत में इकारान्त है परंतु उसे कवि ने यहां मगण होने के कारण के अतिरिक्त गानविद्या संबंधी दोष दूर करने के अभिप्राय से भी ईकारान्त किया है क्योंकि चंद गानविद्या में भी निपुण था और साटक के गाने में तुक की पहिली चौथी मात्रा पर ताल आता है। यद्यपि हमारी कल्पना तो यह है परंतु जब हमने इस ग्रंथ का कुछ भाग कोटा राज्य के विद्वान कविराज श्री चंडीदानजी से पढ़ा था तब उन्हों ने यह बतलाया था कि आदि के पहिले ओ३म् शब्द का प्रयोग कवि चंद ने किया था और उसका अर्थ आदि ओ३म् प्रनम्य अर्थात् "पहिले ओंकार को नमन करके" किया था। यद्यपि यह प्रयोग भी कुछ बैठ जाता है और ठीक सा मालूम होता है और जितनी पुस्तकें रासो की हमारे देखने में आई हैं उनमें प्रायः ऐसा ही पाठ मिलता है परंतु हम इसकी अपेक्षा अपनी कल्पना को अधिक बलवान और युक्त मानते हैं और आशा करते हैं कि यदि वे अब विद्यमान होते तो हमारी इस कल्पना को प्रसन्नतापूर्वक मान लेते। यदि कोई ओ३म् आदि प्रनम्य ऐसा भी पाठ माने तथापि कुछ हानि नहीं है। और जब तक कि किसी बहुत प्राचीन पुस्तक में हमारे इस मानने के विरुद्ध कोई अन्य पाठ न मिल जावे तब तक हम इस को मानना अयोग्य नहीं समझते हैं॥

अब दूसरी पंक्ति का पाठ "सिष्टं धारन धारयं वसुमती लच्छीस चरनाश्रयं" है। इस १२+८=२० अक्षर हैं कि यहां चरनाश्रयं शब्द को हमने चर्नाश्रयं किया है क्योंकि कोई छंद गान से खाली नहीं है और साटक की ध्वनि के अनुसार उच्चारण में यहां रकार स्वर रहित हो जाता है और जैसा उच्चारण और गान में रूप हो वैसा काव्य में लिखने में भी कोई दोष नहीं है। जो कवि गान के नियमों से अपरचित हैं उनके काव्य में ऐसे स्थलों में अनेक दोष रह जाते हैं क्योंकि गान छंद के लिये एक कसौटी है और ऐसे ही मौकों को कवि का अधिकार अर्थात् Poetical Licence कहते हैं। कोई कोई विद्वान कवि के अधिकार की छूट अर्थात् Poetical Licence को दोष मानते हैं परंतु वह एक भ्रम है क्योंकि सस्वर अक्षर का खोड़ा कर देना और खोड़े को सस्वर कर देना व्याकरणादि भिन्न शास्त्रों में दोष समझना चाहिए परंतु छंद रचना और गान में तो यह दोष नहीं कहाता है देखो चंद के इन वचनों के भीतरी आशयों से भी हम यही अनुमान कर सकते हैं–

लहु गुर मंडित खंडियहि। पिंगल अमर भरत्थ॥ ३०॥ १
चरन नीम अच्छिर सुरंग। पाटलहु गुरु विधि मंडिय॥
सुर विकास जारी सु मुष्य। उक्ति रस गोरव नि छंडिय॥ ४०॥ १

तीसरी पंक्ति के पाठ तम गुम तिषृति ईस दुष्ट दहनं। सुरनाथ सिद्धिश्रयं में १४+८=२२ अक्षर हैं। इनमें ऊपर कही हुई युक्तियों के सिवाय थोड़ा सा और ध्यान देने से ज्ञात हो सकता है कि ग्रंथकर्त्ता ने तम गुन और सुरनाथ पाठ नहीं प्रयोग किये थे किन्तु जैसे हम ने अनुमान कर शुद्ध किये हैं तं गुं और सुर्नाथ क्योंकि प्रथम तो इस साटक छंद में मगण होने के कारण तं और गुं ही होने चाहिए और दूसरे चंद के ऐसे प्रयोग इस काव्य में बहुत से स्थलों पर देख पड़ेंगे। यहीं भी हमारे देखने में आवेगा कि त्वम् और अहम् के स्थान में तं और हं जैसे प्रयोग चंद ने किए हैं। इसमें हम को कुछ भी आश्चर्य नहीं करना चाहिए क्योंकि चंद के इस नीचे लिखे वाक्य से हम अच्छी तरह समझ सकते हैं कि उस ने अपने इस महाकाव्य की भाषा में षट भाषा और पुरान की भाषा का आश्रय लिया है–

श्लोक ॥ उक्ति धर्मे विशालस्य । राजनीति नवं रसं ।
षट भाषा पुराणं च । कुरानं कथितं मया ॥ १ ॥

अब शेष चौथी पंक्ति का पाठ **"थिर चर जंगम जीव चंद नमयं सर्वेस वरदा मयं"** में १४+८=२२ अक्षर हैं। इसके स्थान में जो यह पाठ **"थिर्चजंगम जीव चंद नमयं सर्वेस वर्दामयं"** शुद्ध किया गया है उसके लिये ऊपर कही हुई युक्तियों से ही हमारा शोधन करना ठीक मालूम हो सकता है। इसमें इतना और भी आवश्यक है कि सोसाईटी की मुद्रित की हुई पुस्तक में जो **चंदनमयं** पदच्छेद किया है वह अयुक्त है और मिस्टर ऐफ· ग्राऊज़ सासब ने जो **चंद** और **नमयं** पदच्छेद किए हैं वे ठीक हैं और हम भी मिस्टर ग्राऊज़ के पदच्छेद से सम्मत हैं॥

जो पाठ हमने जिस रीति से इस रूपक में शुद्ध किए हैं वे अथवा वैसे ही भी पाठ जो कहीं आगे इस ग्रंथ भर में आवेंगे तो हम उन पर सर्वत्र टिप्पण नहीं करेंगे किन्तु वहां का मूल पाठ हमारे यहां पर वर्णन किए शोधन के प्रकार के अनुसार शुद्ध रहैगा। पाठक महाशय इन ही नियमों से उन पाठों को सिद्ध कर समझ लें अर्थात् जिस नियम को एक स्थान पर टिप्पण में वर्णन कर देंगे वह अन्यत्र नहीं कहा जावेगा। किन्तु जहां कोई नवीन प्रयोग आवेगा वहां उसका वर्णन कर दिखावेंगे॥

जैसे चंद के प्रयोग किए हुए छंदों के नाम और उनके लक्षणों के शोध करने में पुरातत्त्ववेत्ताओं को परिश्रम पड़ता है वैसे ही उसके इस महाकाव्य के अर्थ लगाने में भी अनेक प्रकार की अड़चलें उपस्थित होती हैं। यद्यपि हमारा मुख्य काम इस ग्रंथ के मुद्रित करने में केवल इतना ही है कि उसके मूलपाठ को सार्थक शोध दें परंतु यह महाकाव्य वर्तमान समय में ऐसी बिगड़ी हुई दशा में उपस्थित है कि जो उस पर इतना परिश्रम न किया जाय कि जितना हम यह करते हैं तो हमारा किया हुआ शोधन पुरातत्त्ववेत्ता विद्वानों को भली भांति संतुष्ट नहीं कर सकता। अतएव हम चंद के काव्य की अर्थ संबन्धी कठिनता को दिखलाने के लिये केवल इस मंगलाचरण के रूपकं का अर्थ उदाहरण के लिये करते हैं कि जिससे हमारे पाठकों को मालूम हो कि मूलपाठ का शुद्ध होना अर्थ पर दृष्टि दिए बिना असंभव है। महाकवि चंद अपने इस महाकाव्य के आरंभ में इस मंगलाचरण के रूपक में आदिदेव, गुरू, वाणी, लक्ष्मीश, सुरनाथ और सर्वेश को नमस्कार करता है वह कहता है कि "आदिदेव को नमन कर को और गुरु को नमस्कार करके; वाणी के पदों को वंदन; स्वर्ग, पाताल, (और) पृथ्वी के स्रष्टा लक्ष्मीश के चरणों का आश्रय, दुष्टों के दहन करने को तम गुण (जिस) ईश में रहता है [उस] सुरनाथ की पादुका का सेवन [और] थिर, चर, जंगम, [और] जीव के वरदायमय सर्वेश को [मैं] चंद नमन करताहूं"

हमारे किए इस अर्थ के विचार से विद्वानों को मालूम हो सकेगा कि यद्यपि इस के अनेक प्रकार के अर्थ हो सकते हैं परंतु यह अर्थ चंद के व्याकरण शास्त्र संबन्धी जो नियम उसके इस ग्रंथ से मालूम होते हैं उनके अनुसार सरल और कवि की उक्ति के अनुकूल है। इसमें कितनेक शब्द ऐसे ऐसे भी हैं कि जो अर्थ करने वाले को चमका और भड़का देते हैं परंतु हम इस रूपक के सब शब्दों के विषय में अर्थात् जिसके विषय में जितना कहना आवश्यक है वह कहते हैं—

आदीदेव [सं· पु· आदिदेवः। आदो दीव्यति स्वयं राजते] नारायण। इस शब्द के विषय में हम ने ऊपर कहा है अतएव यहां विशेष नहीं कहते किन्तु उसके प्रयोग के दो प्रमाण और भी यहां देते हैं—सहस्रात्मा मया योव आदिदेव उदाहृतः ॥ या· स्मृ· ॥ वासुदेवो बृहद्भानुरादिदेवः पुरंदरः ॥ वि· सहस्रनाम ॥

प्रनम्य (सं॰ प्रणम्य) नमन करके अथवा प्रणाम कर के ॥

नम्य (सं॰ अ॰ नमः अथवा नम्=नमना) नमस्कार करके। इस शब्द के भी म्य पर साटक की ध्वनि के अनुसार ताल है अर्थात् यहां भी स्वर उदात्त है ॥

गुरुयं गुरु को। यह चंद की हिन्दी के पुल्लिंग गुरु शब्द की द्वितीया का निज प्रयोग है। चंद के ऐसे निज प्रयोगों को देख कर हम को आश्चर्य के वश न हो जाना चाहिए किन्तु इस बात की खोज करनी चाहिए कि चंद की हिन्दी के व्याकरण संबन्धी नियम क्या और कैसे हैं। और ऐसे अनुस्वार सहित शब्दों को देख कर यह अनुमान भी नहीं करना चाहिए कि रासो का ग्रंथकर्त्ता ऐसा निर्बोध था कि उसको अनुस्वार और विसर्ग तक का ज्ञान नहीं था। ये हमारे अन्वेषण ध्यान में लाने योग्य हैं कि प्रथमत: चंद की हिन्दी तीन प्रकार की है षट–भाषा–और–कुरान की–भाषा की–योनिवाली १ षट–भाषा–और–कुरान की-भाषा के सम २ और देशी प्रसिद्ध ३। दूसरे सांप्रत हिन्दी में तो नपुंसकलिंग नहीं है परंतु चंद की हिन्दी में तीनों लिंग हैं। तीसरे जितनी संज्ञा अनुस्वार सहित उसमें प्रयोग हुई हैं वे पुल्लिंग अथवा नपुंसकलिंग ही हैं। देखो यहां **नम्य गुरुयं** वाक्य खंड में कवि के अर्थ को ध्यान में लाने से गुरुयं शब्द पुल्लिंग में प्रयोग किया गया मलूम होता है और पांचवें रूपक की इस तुक **गुरं सव्व कव्वी लहू चंद कव्वी जिन दर्सियं देवि सा अंग हव्वी** ॥ में गुरं शब्द चंद ने अपनी हिन्दी के नपुंसकलिंग की प्रथमा में प्रयोग किया है। और जहां क्रिया शब्दों में अनुस्वार हैं जैसे इसी प्रमाण में प्रवेश की गई तुक में **दर्शियं** शब्द है वह संस्कृत **दर्शितं** से है। बहुत से शब्दों पर लेखकों ने अपने अव्युत्पन्न होनेके कारण जो अनुस्वार लगा दिये हैं उनका सूक्ष्म विचार करने से विद्वान स्पष्ट जान सकते हैं कि यहां कवि ने अनुस्वार का प्रयोग नहीं किया था किन्तु लेखकों ने अपनी अज्ञानता से लगा दिए हैं और कहीं कहीं उन्हों ने कवि के प्रयोग किये हुए अनुस्वारों को उड़ा दिया है जैसे पांचवें रूपक के भुजंगप्रयात छंद की पहिली तुक में चंद ने ऐसा प्रयोग किया था कि **प्रथमं भुजंगी सुधारी ग्रहनं जिनैं नाम एकं अनेकं कहनं** ॥ उस के स्थान में एशियाटिक सोसाईटी की छापी हुई पुस्तक१ के पत्र ३ में देखो कि जिस लिखित पुस्तक से वह छापी गई है उसके लेखक ने **प्रथम भुजंगी सुधारी ग्रहनं जिनै नाम एकं अनेकं कहनं** ॥ पाठ कर दिया है। इसके अतिरिक्त चंद के अनुस्वार सहित शब्दों के प्रयोग करने के और भी अनेक कारण हैं परंतु वह जब अपने संकलित किये हुए चंद के व्याकरण संबन्धी नियम हम कुछ समय में प्रकाश करेंगे तब स्पष्ट रीति से हमारे पाठकों को हमारे बड़े परिश्रम से सिद्ध किये हुए अन्वेषण मालूम हो जांयगे ॥

वानीय (सं॰ स्त्री॰ वाणि:=सरस्वत्याम्) सरस्वती के। यह चंद की हिन्दी में षष्ठी के एक वचन का रूप है और जैसे संस्कृत में श्री: शब्द के रूप में षष्ठी का श्रिय: होता है उसी तरह चंद ने अपनी हिन्दी में वानीय किया है ॥

वंदे-वंदन करता हूं ॥ चेत रखना चाहिए कि हम ऊपर **गुरुयं** शब्द की व्याख्या में चंद की हिन्दी तीन प्रकार की होना बतला आए हैं उसमें से यहां यह **वंदे** संस्कृत–सम के रूप का प्रयोग चंद ने किया है ॥

पयं (सं॰ पय=गतौ) चरणों को ॥ यह चंद की हिन्दी के पुल्लिंग की द्वितीया का रूप है। कोई कोई कवि जो **पय** शब्द को पैर का वाचक होना बिलकुल्ल नहीं बताते और उसका अर्थ यहां "दूध जैसी श्वेत अथवा जल जैसी निर्मल सरस्वती को वंदन करता हूं", करते हैं वे भूलते हैं। **पय** शब्द पैर का वाचक सांप्रत हिन्दी में भी रात्रि दिन बोलचाल में आता है जैसे **पयलगी**,

पैलगी, पालागन, पाय और पयदृत्त, इत्यादि । और संस्कृत में भी पय-ताती है । मिस्टर ग्राउज साहब ने जो इस शब्द को पैर का वाचक अपने अंग्रेजी अनुवाद में माना है वह बहुत ठीक है और हम उनसे इस में सम्मत हैं ॥

सिष्टं (सं० त्रि० सृष्टः=निर्मिते । रचिते) सृजनेवाला । यह चंद की हिन्दी में सं० सृष्टः सृजनेवाले का नपुंसकलिंग की प्रथमा का एकवचन है । इस को शिष्ट अथवा श्रेष्ठ आदि शब्दों का अपभ्रंश मानना अयुक्त है किन्तु वह चंद की हिन्दी में सं० त्रि० सृष्टः का सिष्टं बना है इसी तरह सं० भृष्ट, भ्रष्ट, घृष्ट, वृष्ट, के अपभ्रंश रूप हिन्दी में भिष्ट, घिष्ट, विष्ट, होते हैं ॥

धारण [सं० पु० धारण=स्वर्लोके] स्वर्गलोक ॥ **धारयं** [सं० त्रि० धारय=धारके । नाग देशे ॥ धारयैः कुसुमोर्म्मीणाम् । भट्टिः] पाताललोक ॥ **वसुमती** [सं० स्त्री० भूलोक । स्पष्टम्] भूलोक यहां थोड़ा सूक्ष्म विचार कर हमारे किये अर्थ की सत्यता जांचने का काम है क्योंकि **सिष्टं धारण धारयं वसुमती लच्छीस चर्नाश्रयं** का अर्थ अनेक कवि अनेक प्रकार का करते हैं परंतु हम उन को चंद के अभिप्राय के अनुकूल नहीं समझते । इन शब्दों के पृथक् पृथक् अर्थ तो हम ने संस्कृत कोशों से लेकर वर्णन कर ही दिये हैं । इस के सिवाय **लच्छीस** शब्द जो विष्णु का वाचक है वह हम को यह अर्थ करने को स्पष्ट लखाता कराता है कि धारण=स्वर्गलोक, धारयं=पाताललोक ॥ और वसुमती=भूलोक का सिष्टं=सृजनेवाला [जो] लच्छीस=विष्णु [उस के] चर्नाश्रयं=चरणों का सेवन [करता हूं) यही बहुत ठीक अर्थ है क्योंकि यहां तत्पुरुष समास है और लक्ष्मीश का अर्थ विष्णु शास्त्रों में नीचे लिखे प्रमाण से स्पष्ट है उस से भी हमारा किया हुआ अर्थ अच्छी तरह पुष्ट होता है—

यस्मात् विश्वमिदं सर्वं तस्य शक्त्या महात्मनः ।
तस्मात् देवोच्यते विष्णु विशधातोः प्रवेशनात् ॥
ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च ।
नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वो यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्येति ॥
अनादि निधनं विष्णुं । सर्वलोक महेश्वरं ।
लोकाध्यक्षं स्तुवं नित्यं । सर्व दुःखाति गो भवेत् ॥ ६ ॥
लोकनाथं महद्भूतं । सर्वभूतभवोद्भवं ॥ १० ॥
लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो । धर्माध्यक्षः कृतः कृतः ॥ ३१ ॥
लक्ष्मीवान् समितिं जयः ॥ ५६ ॥ श्रीमाल्लोक चयाश्रयः ॥ ८२ ॥
त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः । केशवः केशिहा हरिः ॥ ८६ ॥
लोकस्वामी त्रिलोक धृत् ॥ ८७ ॥ लोकाधिष्ठानमद्भुतः ॥ ११२ ॥
त्रीन् लोकान् व्याप्य भूतात्मा । भुंक्ते विश्व भुगव्ययः ॥ १४४ ॥
वासनाद्वासुदेवस्य । वासितं भुवन त्रयं ॥ १५३ ॥

चर्णाश्रयं (सं० चरण + आश्रयं =) चरणों का सेवन ॥ यह अनुस्वार सहित शब्द भी चंद की हिन्दी का संस्कृत-सम नपुंसकलिंग है ॥

तं । गुं [सं० न० तमः और पु० गुणः] तम । गुण । चंद की हिन्दी के नपुसकलिंग ॥ प्राकृत-भाषा सम का प्रयोग ॥

तिष्ठति (सं० तिष्टति) रहता है । चंद की हिन्दी के संस्कृत-समभेद का रूप है ॥
ईस(सं० पु० ईशः = महादेव) सदाशिव ॥
दुष्ट (सं० न० दुष्टं = अधमो वंचके) दुष्ट ॥ दुष्ट दहनं = दुष्टों के दहन करने के लिये अथवा दुष्टों के दहनार्थ ॥
दहनं (सं० पु० दहनः = दाहे । भस्मी करणे ।) दहन के लिये चंद की हिन्दी का नपुं० है ॥
सुनाथ (सं० पु० सुर+नाथ = रुद्रे) महादेव की ॥
सिद्धि (सं० स्त्री० = सिद्धिः = पादुकायाम्) पादुका का ॥
श्रयं (सं० पु० श्रयः = श्रयणे । आये ॥ श्रित्र् = सेवायाम्) सेवन ॥ सिद्धि श्रयं = पादुका का सेवन ॥
थिर (सं० पु० स्थिरः = स्थिर पदार्थः) स्थिर वस्तु जैसेः - पर्वत और पृथ्वी आदि ॥
चर (सं० पु० चरः = चले) चर वस्तु अथवा पदार्थ जैसे वस्तु और जलादि ॥
जंगम (सं० त्रि० जंगमः = पशुपक्षी) कीट पतंगादि ॥
जीव (सं० पु० जीवः = प्राणिनि) मनुष्यादि ॥ ध्यान में लेने की बात है कि पंडितों ने सब पदार्थों को स्थावर और जंगम नामक दो भेदों में ही विशेष करके विभक्त किया है । परन्तु चंद ने सब पदार्थों के चार भेद माने हैं । प्रथम स्थिर, जो सदैव स्थिर रहते हैं, जैसे पर्वतादि; दूसरे चर, जो सदैव स्थिर नहीं रहते, जैसे स्थानादि, तीसरे जंगम जो जीव दूध नहीं पीते, जैसे कीट पतंगादि, और चौथे जीव, जो दूध पीते हैं, जैसे मनुष्यादि । हम ने किसी किसी कवि को इन चारों शब्दों के प्रयोग करने के कारण चंद कवि को दोष देते हुए सुना है परन्तु यह उनकी भूल है, क्योंकि उन्हों ने कवि के सूक्ष्म आशय को ध्यान देकर नहीं समझा है ॥
चंद बरदाई = इस महाकाव्य का ग्रंथ-कर्त्ता कि जो हिन्दुओं के अंतिम बादशाह पृथ्वीराज जी चौहान का लँगोटिया मित्र और उनके दरबार का कविराज था । वह भट्ट जाति जो आज कल राव करके कहलाती है उसके जगात नामक गोत्र का था और उसके पुर्षा पंजाब देश के लाहौर नगर के रहने वाले थे और उनकी यजमानी अजमेर के चौहानों की थी । उसकी जैसी शूरवीरता इस महाकाव्य से विदित होती है उसका मुख्य कारण यही है कि वह पंजाब देश की अद्यावधि प्रसिद्ध वीर भूमि के तत्त्वों से उत्पन्न हुआ था और राजपुताने के हृदयरूपी अजमेर नगर में बड़ा हुआ था । वह षट-भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य छंद शास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, मंत्रशास्त्र, पुराण, नाटक, और गान आदिक विद्याओं में अच्छा व्युत्पन्न पंडित था । उसके पिता का नाम वेण और विद्या-गुरु का नाम गुरुप्रसाद था । उस की दो स्त्रियों के नाम कमला अर्थात् मेवा और गौरी अर्थात् राजोरा और एक लड़की का नाम राजबाई और दस लड़कों के नाम सूर १ सुन्दर २ सुजान ३ जल्ह ४ बल्ह ५ बलिभद्र ६ केहरि ७ बीरचंद ८ अवधूत अर्थात् योगराज ९ और गुनराज १० थे । इस महाकाव्य के विषयों को वैसे तो उसने समय समय पर बना कर कंठ कर रक्खा था परन्तु उन को ग्रंथाकार में उस ने ६० ॥ दिन में रचा था और अंत को उसने रासो की पुस्तक अपने लड़के जल्ह को दी थी । इस रासो के अतिरिक्त उस के रचे और भी कई एक ग्रंथ सुनने में आते हैं परन्तु उन में सब से बड़ा ग्रंथ यही है और अन्य सब ग्रंथ अब बिलकुल नहीं मिलते हैं । उसका सविस्तर जीवनचरित और वंशावली जहां तक हमारे जानने में ख्यातादि से आई है वह हम इस ग्रंथ के समाप्त होने पर छाप कर प्रसिद्ध करेंगे ॥

धर्म्म-स्तुति ॥

बथूआ ॥ प्रथम सुमंगल मूल अतबिय । सृति सत्य जल सिंचिय ।
सुतरु एक धर ध्रम्म उभ्यौ ॥
चिषट साष रम्मिय त्रिपुर । बरन पत्त मुख पत्त सुभ्यौ ॥
कुसम रंग भारथ सुफल । उकति अलंब अमीर ॥
रस दरसन पारस रमिय । आस असन कवि कीर ॥
छं० ॥ २ ॥ रू० ॥ २ ॥

नमयं = नमस्कार अथवा नमन करता है अथवा करता हूं ॥
सर्वेस = (सं० सर्वेशः = ब्रह्मा) ब्रह्मा ॥
वर्द्दामय़ं = वरद – स्वरूप ॥

२ इस रूपक के छंद का बथुआ नाम चंद कवि ने तो अपने समय का प्रसिद्ध ही लिखा है परन्तु वह सांप्रत काल में पुरातत्त्ववेत्ता और कविराजाओं को भी पूरा परिश्रम देनेवाला एक छंद है। हमने इस छंद के लक्षण के लिये अपने अंग्रेजी भरतखंड के कवियों के अतिरिक्त राजपूताने के कवियों से भी पूछा और सब ने आज कल के उपलब्ध छंद–ग्रंथों में भी उसे ढूंढा परन्तु जो कवि पक्षपात रहित और सज्जन हैं उन्हों ने तो स्पष्ट कह दिया कि इस नाम का कोई छंद हमारे जानने में नहीं आया है किन्तु चंदकृत इसी महाकाव्य में इस छंद का नाम देखने में आता है- परन्तु जो कवि ऐसे हैं कि अपनी हठ – उक्ति के आगे और कुछ ध्यान में ही नहीं लाते उनमें से किसी ने आर्य्या का एक भेद और किसी ने कहा कि इसमें लेखक और शोधक कवि के दोष से काव्य छंद में अथवा उगाहा में दोहा मिल गया है परन्तु किसी का भी कहना पुरातत्त्ववेत्ताओं को संतोष देने वाला नहीं हो सकता है। इस छंद के विषय में हमारा कहना यह है कि जो आज अमर और भरतकृत छंद–ग्रंथ उपलब्ध होते कि जिन का आश्रय चंद ने लिया है तो उस के शोध में कुछ कठिनता नहीं पड़ती–हम इस छंद को रूपदीप पिंगल में वर्णन किये हुए रिड्डुक का नामान्तर होना निःसंदेह मान कर उस का शोधन करते हैं। देखो रूपदीप पिंगल में रिड्डुक छंद में ही रिड्डुक का यह लक्षण कहा है–

रिड्डुक नाम छंद लक्षण ।

कीजे कला प्रथम तिथ मान, दश एको दूसरे, तीजे गिन दश पांचरिये ॥
फिर चोथे दस एक । परख्यन में पांच में करिये ॥
रोडा सत सठ मत्त है । कीनो सेस बखान ॥
तामें फिर दोहा मिले । रिड्डु छंद पहिचान ॥

इससे मालूम होगा कि यह बथुआ छंद कैसा एक विचित्र छंद है कि जिसकी पहिली तुक में दो यति होने के कारण १५ + ११ + १५ = ४१ मात्रा होती हैं और दूसरी में एक यति होने से ११ + १५ = २६ मात्रा और सब मिलकर ६७। इन दो तुकों के पीछे एक दोहा होता है। जो इसमें दोहा न लगावें तो जहां तक ६७ मात्रा होती हैं वहां तक का रोडा नामक छंद होता है।

कर्म्म-स्तुति ॥

कवित्त ॥ प्रथम मंगल प्रमान । निगम संपजय वेद धुर ॥
त्रिगुन साख त्रिहुं चक्क । वरन लग्गो सु पत्त छर ॥
त्वचा भ्रम्म उद्धरिय । सत्त फूल्यौ चावद्दिसि ॥
क्रम्म सुफल उद्यत्त । अम्रत सुम्रत मध्य वसि ॥
डुलै न वाय न्रप नीति भति । स्वाद अम्रत जीवन करिय ॥
कलि जाय न लगै कलंक दुहि । सत्ति मत्ति आढति धरिय ॥
छं० ॥ ३ ॥ रू० ॥ ३ ॥

इस छंद की प्रथम तुक कि यति के प्रथम टुकड़े में बीय पाठ अशुद्ध है उस के स्थान में हम नें त्रिय किया है। और दूसरी यति के दूसरे टुकड़े में सिंचियइ के स्थान में सिंचिय और भ्रम्मं के स्थान में भ्रम्म और यत के स्थान में पत्त, भारद्दै को भारह, और परस को पारस शुद्ध किया है और ये शोधन ऐसे साधारण हैं कि जिनके लिये कोई तर्क लिखने की आवश्यकता नहीं है ॥

३ इस रूपक में ग्रंथकर्त्ता वृत्त के रूपकालंकार से धर्म्म की स्तुति करता है ॥

कवि ने इस रूपक के छंद को कवित्त संज्ञा दी है। सांप्रत काल में यह छप्यय, छप्पै षटपद, षटपदी आदिक नामों से प्रसिद्ध है परंतु सत्रहवीं शताब्दी के पहिले वह कवित्त नाम से ही प्रसिद्ध था। रूपदीप पिंगलवाले ने भी जो नीचे लिखा छप्यय का लक्षण कहा है उसमें उसने भी यह कहा है कि–"सुन गरुड पंख पिंगल कहै छप्पै छंद कवित्त यह इससे सिद्ध होता है कि इस ग्रंथ के बनने के समय तक छप्पै का नामान्तर कवित्त करके प्रसिद्ध था ॥

छप्पै

लहु दीरघ नहि नेम । मत्त चोबीस करीजे ॥
ऐसे ही तुक्क सार । धार तुक चार भरीजे ॥
नाम रसावल होय । और वस्तू कभि जानहु ॥
उल्लाला की विरत । फेर तिथि तेरह आनहु ॥
द्वै तुक्क बनावो अंत की । यत यत में अठ बीस गहु ॥
सुन गरुडपंख पिंगल कहै । छप्पै छंद कवित्त यह ॥

इस के अतिरिक्त मंछ कवि कृत रघुनाथ रूपक में भी उसने छप्पै छंदों को कवित्त कर के ही लिखा है ॥

इस के पाठ को शोधन करने में ध्यान में लेने जैसी बात है कि प्रथम और मंगल शब्दों के बीच में जो बहुत सी पुस्तकों में किय शब्द है वह अधिक होने से अशुद्ध है क्योंकि उस पाद में कुल ११ मात्रा होनी चाहियें बेदलेवाली पुस्तक में संपजय शब्द है और एशियाटिक सोसाइटी की छापी हुई पुस्तक में जो संपूजय किया गया है–इसमें मेरी सम्मति यह है कि पाठ में तो संपजय ही रखना चाहिये परंतु अर्थ करने में संपूजय समझना चाहिये–क्योंकि संमपूजय

मुक्ति-स्तुति ।

कवित्त ॥ भुगति भूमि किय क्यार । वेद सिंचिय जल पूरन ॥
बीय सुबय लय मध्य । ग्यांन अंकू रस जूरन ॥
त्रिगुन साख संग्रहिय । नाम बहु पत्त रत्त छिति ॥
सुक्रम सुमन फुल्लयौ । मुगति पक्की द्रव संगति ॥
दुज सुमन डसिय बुध पक्क रस । वट विलास गुन पित्तरिय ॥
नरु इक्क साख त्रयलोक महि । अजय विजय गुन वित्तरिय ॥
छं० ॥ ४ ॥ रू० ॥ ४ ॥

पूर्व कवियों की स्तुति और उच्छिष्ट संज्ञा कथन ॥

भुजंगप्रयात ॥

प्रथमं भुजंगी सुधारी ग्रहंनं । जिनें नाम एकं अनेकं कहंनं ॥

पाठ रखने से छंद टूटता है। गुजराती भाषा में ऐसे शब्द बहुत आते हैं जैसे मुकुन्दराम का मकन्दराम, तुलसी का तलशी, और शिव का शव । ऐसे मुख दोष के कारण से बिगड़े हुए शब्दों के रूपों के लिये एक यह श्लोक भी प्रसिद्ध है–

गुर्ज्जरो मुखदोषेण । शिवोपि शवतां गत: ॥
तुलसी तलशी जाता । मुकुन्दोपि मकन्दतां ॥

इसके अतिरिक्त चंद की हिन्दी में ऐसे प्रयोग बहुत से आवेंगे जैसे "बिन्दलालाट प्रसेद कियो" यहां प्रस्वेद का प्रसेद हुआ है। चिहुं के स्थान में चिहु किया है क्योंकि यहां अर्ध अनुस्वार प्राप्त है। लग्गो के स्थान में लग्गो, उदयत के स्थान में उदयत्त । लग्गौ के स्थान में लगै और सति मति के स्थान में सत्ति मत्ति सुधारे हैं क्योंकि ऐसे पाठ सुधारने में छंद के टूटने का दोष हम को स्वयम् सचेत करता है ॥

४ इस रूपक में भी चंद कवि रूपकालंकार से कर्म की स्तुति करता है ॥

इसके पाठ में एशियाटिक सोसाईटी आदि की पुस्तकों में जो अंकूर और सजूरन पाठ हैं वे एक बालक भी जान सकता है कि बड़ेही अशुद्ध हैं किन्तु दृष्टि देने से हमारे किये पद-च्छेद से सार्थक पाठ हो जाते हैं अर्थात् अंकू रस जूरन। हम ने रत के स्थान में रत्त, छित्ति के स्थान में छित पाठ किये हैं। हमारे डसिय पाठ के स्थान में आगरा कालेज और बेदले आदि की पुस्तकों में झसिय पाठ है परंतु वह अशुद्ध है। मालूम होता है कि उन के लेखकों ने ड को ऐसा झ समझ कर अशुद्ध पाठ लिख दिया है और अर्थ पर दृष्टि देकर प्रति नहीं की है ॥

५ स्मरण में रखना चाहिये कि इस रूपक में कवि रूपकालंकार से मुक्ति की स्तुति करता है अर्थात् चंद ने दूसरे तीसरे और इस चैाथे रूपकों में क्रम से धर्म्मेश्वर, कर्म्मेश्वर, और मुक्तेश्वर नामक ईश्वरों के मंगलाचरण किये हैं ॥

६ इस भुजंगप्रयात नामक छंद का लक्षण चंद कवि के माने हुए छंद ग्रंथों में से पिंगलमुनि

दुती लभ्भयं देवतं जीवतेसं । जिनैं विश्व राख्यौ बली मंच सेसं ॥
त्रवं वेद बंभं हरी कित्ति भाखी । जिनैं ध्रम्म साधम्म संसार साखी ॥
तृती भारती व्यास भारत्थ भाख्यौ । जिनैं उत्त पारथ्थ स रथ्थ साख्यौ ॥
चवं सुक्खदेवं परीखत्त पायं । जिनैं उद्धर्यौ श्रब्ब कुवंस रायं ॥
नरं रूप पंचम्म श्रीहर्ष सारं । नलैराय कंठं दिने पद्ध हारं ॥
छटं कालिदासं सुभाषा सुबद्धं । जिनैं वागवानी सुबानी सुबद्धं ॥
कियो कालिका मुख्ख बासं सुसुद्धं । जिनैं सेत बंध्योति भोज प्रबंधं ॥
सतं डंडमाली उलाली कवित्तं । जिनैं बुद्धि तारंग गंगा सरित्तं ॥
जयद्देव अट्ठं कवी कब्बिरायं । जिनैं केवलं कित्ति गोविंद गायं ॥
गुरं सब्ब कब्बी लहू चंद कब्बी । जिनैं दर्सियं देवि सा अंग हब्बी ॥
कवी कित्ति कित्ती उकत्ती सुदिख्खी । तिनैं की उचिष्टी कवी चंद भख्खी ॥
छं० ॥ १० ॥ रू० ॥ ५ ॥

यह लिखते हैं कि "भुजं प्रयातं यः ॥३८ ॥ अर्थात् जिस के पाद में चार यकार (यगण) हों वह भुजंगप्रयात नामक छंद कहाता है ॥

इस पांचवें रूपक के जो पाठक एशियाटिक सोसाईटी की और अन्य पुस्तकों में बहुत अशुद्ध हैं वे ये हैं:-प्रथम। ग्रहनं। कहनं। लब्भयं। भारथ। उतपारथ। सारथ। सुखदेवं। परीषत। उद्धयौं श्रव। कुरुवंस षद्ध। कालिदास। मुष्य। सुसुद्ध। वंध्यौ। तिभोजन। बुद्धितारंग। गंगासरित्तं जयदेव। अठं। केवल। दरसिय। उकति। तिन। कवि। और भष्यी। इनमें से प्रत्येक को सिद्ध करने के लिये जो हम सतर्क विवेचना करें तो बहुत स्थान चाहिये परंतु मैं आशा करता हूं कि पुरातत्त्ववेत्ता इन को हमारे शुद्ध पाठों से मिलाकर और जो कुछ चंद कवि की हिन्दी के नियम हम ने संक्षेप में पहिले प्रकाश किये हैं उनसे विचार कर सिद्ध कर लेंगे।

इस रूपक में चंद कवि अपने से पहिले हुए मुख्य मुख्य कवियों की स्तुति करके अंत की दो तुकों में उनको अपने गुरु मान कर और आप निरभिमानी होकर अपने काव्य को उनके कहे काव्य की उच्छिष्टी होने की संज्ञा देता है। जैसे कि इस महाकाव्य के किसी किसी रूपक में चंद के समय के पीछे बरते हुए वृत्त लिखे प्राप्त होते हैं और उन पर से इस ग्रंथ की प्रामाणिकता में संदेह किया जाता है वैसेही यह रूपक क्या इस ग्रंथ की प्रामाणिकता के सिद्ध करनेवाला एक प्रमाण रूप नहीं है? और अन्य कवि जैसे श्रीहर्ष और जयदेवादि के समय के निश्चय और निर्णय करने में पुरातत्त्ववेत्ताओं का सहायक और उपकारी नहीं हो सकता है?

इस के अतिरिक्त इस छंद की तीसरी तुक में जो एक बंभं शब्द चंद कवि ने प्रयोग किया है उस को देख कर चारण राव और भाट जाति के अच्छे अच्छे कवियों को हम ने आश्चर्य करते हुए देखा है और वे उसका अर्थ बंड बंड करते हैं। कोई उसको ब्रह्म शब्द का अपभ्रंश बतलाता है और कोई चारों वेदों के ग्रंथों का वाचक बतलाता है और कोई कहता है कि महादेव की मूर्ति के आगे जो गाल बजा के बंबं शब्द मुख से कहते हैं और ऐसा करने से महादेव प्रसन्न हो

चंद की स्त्री अपने पति के उच्छिष्ट संज्ञा कथन में शंका करती है ॥

दूहा ॥ उचिष्ट चंद छंदह वयन । सुनत सु जंपिय नारि ॥
तनु पवित्र पावन कविय । उकति अनूठ उधारि ॥
छं० ॥ ११ ॥ रू० ॥ ६ ॥

कवित्त ॥ कहै कंति सम कंत । तंत पावन बड़ कब्बिय ॥
तंत मंत उद्धार । देवि दरसिय भक्ति चब्बिय ॥

जाते हैं उसका वाचक है परन्तु इस शब्द का हम पता लगाकर बताते हैं कि यह बंभं चंद का हिन्दी का भूतकालिक क्रियावाचक शब्द है और संस्कृत भाषा में यङ्लुगन्तप्रक्रिया के प्रयोगों में जो बंभणीत बभंति प्रयोग प्रसिद्ध होता है उससे बना है और उसका यहां फिर २ वा वार २ पढ़ा वा भणा का अर्थ है। क्योंकि "चवं वेद बंभं हरी किति भाखी" इस तुक का अर्थ यह है कि जिस "जीवतेस ने चारों वेदों को बार २ पढ़ा वा भणा और हरी की कीर्ति को भाखा" जो मनुष्य संस्कृत भाषा में अच्छा व्युत्पन्न और पक्षपात और हठ जैसे दोषों से विमुक्त और सत्य का दृढ़ अवलंबन करनेवाला है वह हम आशा करते हैं कि ऐसे प्रयोगों को देख कर कदापि यह नहीं कहेगा कि इस महाकाव्य का ग्रंथकर्त्ता चंद्र संस्कृत भाषा में अव्युत्पन्न था ॥

इस रूपक में चंद कवि आठ कवियों को अपने गुरु मान कर उन की स्तुति और उनकी काव्य रचन–शक्ति का वर्णन करता है वह सब से पहिले भुजंगी नाम से परमेश्वर को कवि ग्रहण करता है क्योंकि वेदादिक में उस का कवि नाम कहा है यथा –

"होता वा दैव्या कवी०" यजु: "प्रथम वरजं भेषजं कविम्०" यजु:
"कविर्मनीषी परिभू: स्वयंभू०" ईशोपनिषत्
"कवि: क्रान्तदर्शी सर्वर्डक् नान्यतोऽस्ति द्रष्टा" इश्रुते: ॥ शा० भा०
"कवि पुराणमनुशासितारम्०" गीता ॥

दूसरे जीवतेश सेष्प्राणनाथ अर्थात् ब्रह्मा कि जो आदि कवि कहता है जैसे भागवत में कहा है कि "तेने ब्रह्महृदा य आदि कवये मुह्यन्ति यत् सूरय" ॥

बाकी सब कवियों के विषय में कुछ विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि सर्व साधारण लोग व्यासादि के नाम से भले प्रकार विज्ञ हैं ॥

६–७–कवि चंद ने जो पहिले रूपक में अपने काव्य को अपने से पहिले हुए कवियों के काव्य का उच्छिष्ट होना कहा है उसे सुन कर उसकी स्त्री उच्छिष्ट संज्ञा में आश्चर्य के साथ शंका और अपने पति के गुणों का वर्णन करती है अर्थात् इन रूपकों में कवि चंद ने अपनी स्त्री के प्रश्नोत्तर के प्रसंग से अपने काव्य की उच्छिष्ट संज्ञा के हेतु और अपने गुण प्रकाश किये हैं। इन में सम, कंति और कंत शब्दों के प्रयोग विद्वानों की दृष्टि में रहने योग्य हैं। सम (सं० अ० सम्=संगे,–संबन्धे, समुच्चये,) को अथवा प्रति, और सम ब्रह्मरूप में सम शब्द तुल्य के अर्थ में कवि ने प्रयोग किया है ; कंति (सं० स्त्री कम्=ति) पत्नी अथवा स्त्री, और कंत (सं० पु० कम्+त) पुरुष अथवा

तंत बीर उग्रंत । रंग राजन सुख दाइय ॥
बाल केल प्रत्यंग । सुरनि उद्धरि कविताइय ॥
अवलंब उकति उच्चार करि । जिहित मोहि कोविद रचै ॥
सम ब्रह्मरूप या सब्द कहुँ । क्यों उचिष्ट कवियन कचै ॥
छं० ॥ १२ ॥ रू० ॥ ७ ॥

चंद अपनी स्त्री की शंका का समाधान करता है ॥

कवित्त ॥ सम बनिता बर बंदि । चंद जंपिय कोमल्ल कल ॥
सबद ब्रह्म इह सत्ति । अपर पावन कहि निर्मल ॥
जिहित सबद नहिं रूप । रेख आकार ब्रन्न नहिँ ॥
अकल अगाध अपार । पार पावन चयपुर महिँ ।
तिहिँ सबद ब्रह्म रचना करौं । गुरु प्रसाद सरसें प्रमन ॥
जद्यपि सु उकति चूकौं जुगति । तौ कमल बदनि कवितह हँसन ॥
छं० ॥ १३ ॥ रू० ॥ ८ ॥

चंद की स्त्री पुनश्च शंका करती है ॥

कवित्त ॥ तुम बानी बरबंद । नाग देखंत विमल्ल मति ॥
छंद भंग गन रहित । कंठ कौमार काव्य छत ॥

पति, यह तीनों चंद की हिन्दी के संस्कृत-सम प्रयोग है । और तंत और मंत शब्दों के प्रयोग भी दृष्टि देनें जैसे हैं तंत पावन में तंत =तत्व और तंत मंत में तंत=तंत्र और मंत=मंत्र के वाचक कवि ने प्रयोग किये हैं ॥

अन्य पुस्तकों में यह अशुद्ध पाठ हैं:- सु, जंपिय, कवि, सुख, दाईय, कविताईय, को, विद, समब्रह्मरूप, कहु कविय और न ॥

८ चंद इस रूपक में अपनी स्त्री को उसकी शंका का उत्तर देकर समाधान करता है । **शब्दब्रह्म** (सं० शब्दात्मकं ब्रह्म) शब्द का प्रयोग चंद के व्याकरण और वेदान्त विद्या के ज्ञान का द्योतक है । **गुरुप्रसाद** शब्द यहां श्लेषार्थ में कवि ने प्रयोग किया है क्योंकि ख्यातियों के अनुसार चंद के विद्या-गुरु का नाम गुरुप्रसाद था । यद्यपि कुछ विशेष वृत्त नहीं मिलते तथापि यह **गुरु प्रसाद** नामक पंजाब देश का रहनेवाला एक बड़ा पंडित हुआ है । **कवितह** चंद की हिन्दी का निज प्रयोग है और उस का अर्थ कवित्त अर्थात् काव्य रचनेवाले कवि का है। किसी किसी पुस्तक में जो बरबंदि, अमल, त्रयपूर, महि, तिहि, और प्रसन्न पाठ हैं वे अशुद्ध हैं ॥

९ जिन पुस्तकों में ये पाठ हैं-अमीय,सुनर, और समलहहि, वह अशुद्ध हैं इसमें दूसरी तुक का दूसरा पाद "कंठ कौमार काव्य छत" विद्वानों के ध्यान देने योग्य है। इसका आशय यह

बुधि तरंग सम गंग । उकति उच्चार अमिय कल ॥
सुंरन सुमत बिहसंत । मंत जनु वस्य करन बल ॥
अवतार भूप प्रिथिराज पहु । राज सुख तिन सम लहहि ॥
बीराधि बीर सामंत सब । तिन सु गल्ह अच्छी कहहि ॥
छं० ॥ १४ ॥ रू० ॥ ९ ॥

चंद अपनी स्त्री की शंका का पुनश्च समाधान करता है ॥

कवित्त ॥ गज गवनी प्रति चंद । छंद कोमल उच्चारिय ॥
मनहरनी रस बेलि । सुरन सागर रस धारिय ॥
बंक नयन बय बाल । प्रान वल्लभ सुखदाइय ॥
अगुन निगुन गुरु अहनि । गवरि पूजा फल पाइय ॥
भए आदि अंत कविता जिते । तिन अनंत गति मति कहिय ॥
अनेक ग्रंथ तिन बरनवत । यौं उच्चिष्ट मति मैं लहिय ॥
छं० ॥ १५ ॥ रू० ॥ १० ॥

चंद अपनी स्त्री के आगे ईश्वर के ऐश्वर्य का वर्णन करता है ॥

॥ पद्धरी ॥
प्रनम्म प्रथम मम आदिदेव । ऊंकार सब्द जिन करि अछेव ॥
निरकार. मध्य साकार कीन । मनसा बिलास सह फल फलीन ॥ १६ ॥
चयगुनह तेज चयपुर निवास । सुर सुरग भूमि नर नाग भास ॥
फुनि ब्रह्मरूप ब्रह्मा उचारि । कथि चतुरवेद प्रभु तत्त सारि ॥ १७ ॥

है कि चंद की स्त्री अपने पति से कहती है कि तुम कंठ कौमार काव्य कृत हो अर्थात् तुम को कौमार काव्य कंठ है । क्यों यह भी चंद के संस्कृत भाषा में व्युत्पन्न होने का एक अच्छा प्रमाण नहीं है ?

१० अन्य पुस्तकों में ये पाठ अशुद्ध हैं बेली, सुखदाईय, जिते, बरन, बत और में । इस रूपक में **गवरि** शब्द श्लेषार्थ में कवि ने प्रयोग किया है क्योंकि ख्यातियों में चंद की स्त्री का नाम गौरी करके प्रसिद्ध है ॥

११ इस रूपक के छंद का नाम पद्धरी है और उसका लक्षण यह है—
दस करो प्रथम फिर षट मिलाय । गिन षोडश मत्ता पाय पाय ।
इस जगन अंत में धरत सोय । भनि शेष पद्धुरी छंद होय ॥ रूप दी० ॥

इस रूपक में चंद अपनी स्त्री को ईश्वर का ऐश्वर्य वर्णन कर बताता है और पहिली तुक में प्रनम्य पाठ नहीं ग्रहण करना चाहिये किन्तु प्रनम्म पाठ ठीक है अर्थात् चंद अपनी स्त्री को

बरनयौ आदि करता अलेख । गुन रहित गुननि नह रूप रेख ॥
जिहि रचे सुरग भू सत पताल । जम ब्रह्म इन्द्र रिषि लोकपाल ॥ १८ ॥
पवन अग्गि जल धर अकास । सरिता समुद्द निधि गिर निवास ॥
असि लक्ख चार रच जीव जंत । बरनंत ते नहीं लहें अंत ॥ १९ ॥
अट्ठार बन्न बेली सु कीन । नाना प्रकार सब गुन अधीन ॥
करि सकै न कोइ अग्याहि भंग । धरि हुकुम सीस दुख सहै अंग ॥ २० ॥
दिनमान देव रवि रजनि भोर । उग्गैंइ बनैं प्रभु हुकम जोर ॥
ससि सदा राति अग्या अधीन । उग्गैं अकास होय कला हीन ॥ २१ ॥
दिगपाल दाबि रहै सबरि भूंमि । चमकैं न कार रहै चांपि चूंमि ॥
परिमान पवन करि गवन गाह । घटि बढि अंग मंडै उछाह ॥ २२ ॥
इन्द्र सुर्ग मेघ अग्या अकास । बरखा सु बरख रक्खे हुलास ॥
धर रहि अचल होय प्रभु प्रताप । हलि चलि न भिमख सकै सताप ॥ २३ ॥
उट्ठंत लहरि लग्गी अकास । तठ समुद सत्त नहिं खोज तास ॥
परिमान अप्प लंघै न कोइ । करै सोइ क्रम प्रभु हुकम जोइं ॥ २४ ॥
अग्यान मेटि को सकै ताहि । भूत न भविष्य को व्रत्त माहिं ॥
बरनयौ वेद ब्रह्मा अछेह । जल थलह पूरि रह्यौ देह देह ॥ २५ ॥
पुनि कहे व्यास दसअठ पुरान । अवतार रचित नाना विधान ॥
बरनयौ विमल मति देव देव । सब रहै सोधि नह लह्यौ भेव ॥ २६ ॥
फुनि बालमीक रामावतार । सत कोटि ग्रंथ कथिं तत्त सार ॥
विध्वंसि सीय कज देव दाद । प्राक्रंम रीक कपि दयित वाद ॥ २७ ॥
पुनी पंच काव्य कवितान कीन । अग्यान नरन उर दीप दीन ॥
कित्तीक वात मो मति प्रकास । करि सकों अब्ब तो होइ हांस ॥

छं० ॥ २८ ॥ रू० ॥ ११ ॥

कहता है कि तू प्रथम् मेरे आदि देव को प्रनमन कर कि जिसने ऐसा २ किया है। हमारा यह कहना अर्थ पर दृष्टि देने से बहुत ठीक प्रतीत हो सकता है। अन्य पुस्तकों में जो ये मिलते हैं वे अशुद्ध हैं जैसे-प्रनम्य. मन, ब्रह्मांड, चार, सत्त, पाताल, पवनह, अरु, असि्स, च्यार, कोई, सबर, कोर, बढी, संताप, नहि, व्रत्तमां, हि, कहै, न, हलह्यौ, सीयक, जदेव, प्राक्रम और अब्ब ॥

इस रूपक के छंद २३ की पहिली तुक के पहिले पाद में जो हमारे **सबरि** पाठ के स्थान में एशियाटिक सोसाईटी की छापी हुई पुस्तक में **सबर** पाठ है और उस को मिस्टर जान बीम्स

चंद की स्त्री अपने पति से अष्टादश पुराणों की अनुक्रमणिका पूछती है ॥

दूहा ॥ सुनत काव्य कवि चंद कौ । चित आनन्दी नारि ॥
तुम बानी बानी प्रसन । हसन हुवंत िवारि ॥
छं० ॥ २९ ॥ रु० ॥ १२ ॥

कवित्त ॥ कहै कंति मतिवंत । तंत रसना रस सागर ॥
तुम गुन श्रवन सुहंत । जानि चमकंत कलाधर ॥
तुम देवी वरदान । दान दीजै मुहि कब्बिय ॥
अष्टादसह पुरान । नाम परिमानह सब्बिय ॥
तुम कथन कथन आनन्द मुहि । अग्ग पच्छ भव सुद्दरै ॥
अग्यान तिमर नट्ठय सुनत । अध्व कमल हिय उद्दरै ॥
छं० ॥ ३० ॥ रु० ॥ १३ ॥

चंद अष्टादश पुराणों की अनुक्रमणिका का कथन करता है ॥

पद्धरी ॥ ब्रह्मन्यदेव सम वासुदेव । अष्टदस पुरान तिन कहि सुभेव ॥
तिन कहौं नाम परिमान ब्रन्न । जिन सुनत सुद्ध भव होत तन्न ॥ ३१ ॥
ब्रह्मह पुरान दस सहस जुहि । जिहि पढ़त सुनत तन तप्प कुहि ॥
पचास पंच हज्जार गन्नि । पद्मह पुरान तिन कह्यौ ब्रन्नि ॥ ३२ ॥
तेतीस सहस सैं चारि जानि । विष्णू पुरान वि ॥ू समानि ॥

साहब ने जो अरबी صبر सब्र शब्द होना अनुमान किया है वह अयुक्त है क्योंकि अरबी صبر सब्र शब्द का अर्थ यहां सर्वरीत्या अघटित है किन्तु मानना चाहिये कि चंद ने हिन्दी **सवरि** शब्द का छंद टूटने के कारण **सबरी** प्रयोग किया है और रासो की किसी २ पुस्तक में ऐसा पाठ भी मिलता है । जो इस शब्द को रकार और बकार के उलट पुलट लिखे जाने से **बरस** शब्द होना भी हम मानें तथापि यह कुछ असंगत नहीं है ॥

१२ इस में **प्रसन्न** शब्द का पाठ किसी २ पुस्तक में मिलता है परंतु यहां छंद टूटने के कारण कवि ने **प्रसन** करके प्रयोग किया है ॥

१३ इस कवित्त के भिन्न २ पुस्तकों में जो पाठ मिलते हैं वे अयुक्त हैं जैसे–कहे, वर दानि, पछू, नट्ठ, य, अंध्वक, और मल ॥

१४ इस रूपक के अशुद्ध पाठान्तर अन्य पुस्तकों में ये हैं–अष्टादस, कहै, सभेव, ब्रन्निहो, तब्बनि, तप्प, पंचास, पंचह, च्यारि, तिष्णु, अठार, भागवत, तहं, तेईस, दुख, संपूर, अग्नि, पठि इग्यार, अछ, पछ, कूरम, मछ, भक्ति, इरांन, सहंस, और नंस ॥

इस रूपक के ४१ वें छंद की एक तुक भाषा के कवि घटती बताकर चंद पर दोषारोपण करते हैं परंतु यह उनकी भूल है क्योंकि चंद ने इस छंद को एक ही तुक में कहा है

चौबीस सहस कहि शिव पुरान । तिहि पढ़त सुनत सम अमिय पान ॥ ३३ ॥
अट्ठारह सहस भागवत्त भेव । करि पार परिक्खत सुक्कदेव ॥
नारद पुरान कहि पाव लाख । तहं मुक्ति मोद आनन्द भाख ॥ ३४ ॥
मार्कंड नाम तेइस हजार । पौरान पवित्र सो दुःख जार ॥
पंद्रह हजार संख्या सुपूर । अग्नी पुरान पढि पाप दूर ॥ ३५ ॥
चवदै हजार सैं पांच पट्ठि । भवषित पुरान सो पाप जट्ठि ॥
ब्रह्मवैवत सहसं अठार । केवल गिनान कथि भक्ति सार ॥ ३६ ॥
रुद्रह हजार लिंगह पुरान । आनन्द अर्थ आगम गुरान ॥
चौबीस सहस बाराह भक्ति । पौरव पुरान तिन अमित सक्ति ॥ ३७ ॥
हजार इक्यासी कहि विवेक । स्कंदह पुरान भव भक्ति एक ॥
ग्यारह सहस बावन सु अच्छ । पौरान सुनंत सुधि अग्गपच्छ ॥ ३८ ॥
सत्रह हजार कूरंम पुरान । भा ा विनोद प्राक्रम पुरान ॥
विद्या हजार मित मच्छ देव । विधि संख उद्धरे सेव भेव ॥ ३९ ॥
उनईस सहस गरुड़ह पुरान । श्रोतान वक्त भक्ती प्रमान ॥
ब्रह्मांड पुरान बारह सहस्स । करि व्यास भक्ति प्रभु कंस नस्स ॥ ४० ॥
पंद्रह हजार अरु चार लाख । सम ब्रह्म व्यास कहि चंद भाख ॥
छं० ॥ ४१ ॥ रू० ॥ १४ ॥

चंद अपनी लघुता वर्णन करता है ॥

दूहा ॥ फूलि किति चहुआन की । जुग्गनि जुग्ग निवास ॥
अप्प मत्ति सरसें सबल । मनो करौ कवि हास ॥
छं० ॥ ४२ ॥ रू० ॥ १५ ॥

और श्लोकार्ध कहने और लिखने की रीति संस्कृत भाषा के काव्यों में प्रचलित है। चंद की यह संस्कृत-काव्य- सम शैली इस महाकाव्य में बहुत स्थानों पर देखने में आवेगी अतएव भ्रम को इस पर आश्चर्य नहीं करना चाहिये। ऐसे उदाहरण पुराणों में बहुत मिलेंगे परंतु जिन के पढ़ने में माघ काव्य भी आया होगा वे जानते होंगे कि माघ के ग्रंथकर्ता ने पहिले सर्ग के दूसरे श्लोक के साथ नीचे लिखा अर्द्ध-श्लोक कहा है –

"द्विधा कृतात्मा किमयं दिवाकरो । विधूम रोचिः किमयं हुताशनः ॥
गतं तिरश्चीनमनूरु सारथेः । प्रसिद्धमूर्ध्व ज्वलनं हविर्भुजः ॥ २ ॥
पतत्यधोधाम विसारि सर्वतः । किमेतदित्याकुल मीक्षितं जनैः ॥

१५ इसमें अशुद्ध पाठान्तर ये हैं :–अप्प और मति ॥

गाहा ॥ पय सक्करी सुभत्तौ । एकत्तौ कनय राय भोयंसी ॥
कर बंसी गुज्जरीय । रब्बरियं नैव जीवंति ॥
छं० ॥ ४३ ॥ रू० ॥ १६ ॥

सत्त खनै आवासं । महिलानं मह सद्द नूपरया ॥
सतफल वज्जुन पयसा । पब्बरियं नैव चाखंति ॥
छं० ॥ ४४ ॥ रू० ॥ १७ ॥

रब्बरियं रस मंदं । क्यूं पुज्जति साध अमियेन ॥
उकति जुकत्तिय ग्रंथं । नथि कत्थ कवि कत्थिय तेन ॥
छं० ॥ ४५ ॥ रू० ॥ १८ ॥

याते वसंत मासे । कोकिल झंकार अंब बन करयं ॥
बर बब्बूर विरष्यं । कपोतयं नैव कलयंति ॥
छं० ॥ ४६ ॥ रू० ॥ १९ ॥

सहसं किरन सुभाउ । उगि आदित्यं गमय अंध रं ॥
अय्यं उमा न सारो । भोडलयं नैव झलकंति ॥
छं० ॥ ४७ ॥ रू० ॥ २० ॥

कज्जल मधि कस्तूरी । रानी रेहंत नयन अंगारं ॥
कों मसि घसि कुंभारी । किं नयने नैव अंजंति ॥
छं० ॥ ४८ ॥ रू० ॥ २१ ॥

ईस सीस असमानं । सुर सुरी सलिल निष्ट नित्यानं ॥
पुनि गलती पूजारा । गडुवा नैव ढालंति ॥
छं० ॥ ४९ ॥ रू० ॥ २२ ॥

१६–२२ गाहा छंद का लक्षण यह है –

गाहा पहिले बारह । दूजे अठारहे कला राजे ॥
तीजे बारह धारहु । पंद्रह चैाथे तहां छाजे ॥

इन गाहा छंदों में अशुद्ध पाठान्तर ये हैं – सनफल, क्यूपने, बं॰, रवि, रष्यं, नगय, सुरीस लिल, और फुनि ॥

बाईसवें गाहा के ॥ ईस सीस आसमानं" में जो आसमानं शब्द है उस को जो मिस्टर जान बीम्स साहब फारसी आसमान آسمان होना अनुमान करते हैं उससे हम बिलकुल असम्मत हैं । हम इस को सं० असमानं, त्रि० (नास्ति समानो यस्य ।) अतुल्यं, विजातीयं, सजातियभिन्नं, का वाचक समझते हैं अर्थात् ईस=परमेश्वर का सीस=शिर; आसमानं=अतुल्य है ।

चंद उत्तापित होकर अपने को पूर्व-कवियों का दास होना, उनकी उक्ति को कहना और अपनी को बकना कहता है॥

दूहा॥ कहां लगि लघुता बरनवों। कविन दास कवि चंद॥
उन कहि ते जो उब्बरी। सो बकहों करि छंद॥
छं०॥ ५०॥ रू०॥ २३॥

चंद खलों का स्वभाव वर्णन करके सुजनों के निमित्त अपना काव्य रचन करना कहता है॥

दूहा॥ सरस काव्य रचना रचौं। खल जन सुनि न हसंत॥
जैसे सिंधुर देखि मग। स्वान सुभाव भुसंत॥
छं०॥ ५१॥ रू०॥ २४॥
तौ पनि सुजन निमित्त गुन। रचिये तन मन फूल॥
जूका भय जिय जानिकैं। क्यौं डारियै दुकूल॥
छं०॥ ५२॥ रू०॥ २५॥

सरस्वती की स्तुति॥

॥ साटक॥ मुक्ताहार विहार सार सुबुधा, अबुधा बुधा गोपिनी॥
सेतं चौर सरीर नीर गहिरा, गौरी गिरा जोगनी॥
बीना पानि सुबानि जानि दधिजा, हंसा रसा आसिनी॥
लंबोजा चिहुरार भार जघना, बिघ्ना घना नासिनी॥
छं०॥ ५३॥ रू०॥ २६॥

गणेश की स्तुति॥

कचंजा मद गंध राग रुचयं, अलिभूराकादितं॥
गुंजा हार अथार सार गुनजा, झंझा पथा भासितं॥
अग्रेजा श्रुति कुंडलं करि कर, स्तुहीर उद्दारयं॥
सोयं पातु गनेस सेस सफलं, पृथ्राज काव्यं क्रतं॥
छं०॥ ५४॥ रू०॥ २७॥

२३-२५ इनमें जो किसी पुस्तक में तेजो पाठ है वह अशुद्ध है। कवि चंद ने अपनी लघुता वर्णन करते २ अंत को उत्तापित होकर जो ये दो दोहे (२४॥५२॥ +२५॥ ५३) कहे हैं वे इस महाकाव्य के पाठकों और खंडन करनेवालों के ध्यान में रहने योग्य हैं॥

२६-२७ इन रूपकों में यह अशुद्ध पाठान्तर हैं -गोपनी, गिराजोगनी, सुबानी, दधि, जाहं

गणपति की उत्पत्ति कथा ॥

विराज ॥ रतं रत्त भारी । कहना बिचारी ॥
लियौ मात नक्खं । बियो संख लक्खं ॥ ५५ ॥
मिले एक दीहं । रमै काम सीहं ॥
इकं रिष्य आयौ । दियौ काम चायौ ॥ ५६ ॥
खिझ्यौ रिष्पि भारी । दियौ काम डारी ॥
भयौ पुच नब्बं । धजा मोर सब्बं ॥ ५७ ॥
सिरो मालधारी । गनेसं बिचारी ॥
खिजे नब्ब ईसं । भयौ रोम बीसं ॥ ५८ ॥
अबस्ला इकल्ली । वियौ पुर्ष भिल्ली ॥
डके डोर नहं । चन्या पुच बहं ॥ ५९ ॥
खिजी मात भारी । सरायं बिचारी ॥
करी जाकु ईसं । धस्यौ पुच सीसं ॥ ६० ॥
सबै कज्ज अग्गै । तुही नाम लग्गै ॥
कलानंद रूपं । गनेसं सभूपं ॥ ६१ ॥
इकं दंन्त दन्ती । विराजंत कंती ।
सुभै दंत ऐसै । कबिंदं प्रसंसै ॥ ६२ ॥
मनो भूमि धारी । बराहं उधारी ॥
इसी नट्ठ तेजं । कला सोम केजं ॥ ६३ ॥
नमो देव कहं । प्रजा ईस महं ॥
भखै भूत प्रेतं । निजारी न हेतं ॥ ६४ ॥

सरसा, लंबी, जा, विघना, छत्रं, मदं, जा, अने, जा, करः, स्तु, दीर, पृथिराज, काव्य और कृते । इन में एक पृथीराज शब्द के स्थान में जो हमने पृथ्राज पाठ रक्खा है वह एक रासो की पुस्तक में है और चंद का ऐसा प्रयोग देखकर राजपूताने और बृज की ग्रामीण भाषाओं से परिचित विद्वानों को कुछ आश्चर्य न होगा क्योंकि उन्हों ने ऐसे ही गजराज के स्थान में गज्राज बोलते और खेलते लोगों को देखा और सुना होगा । यह चंद की हिन्दी के देशी प्रसिद्ध नामक भेद का उदाहरण है ॥

२८ अन्य पुस्तकों में पाठान्तर ये हैं –कहना, सात, नष्य, दिये, रिषि, अवल्लाइ, कल्ली, पुरुष, डोरं, धर्षा, तुहि, दद्दु, दैहै, देह, भगतं, लछी, लच्छी, अथं, नथं, समली, पती, धरं, त्रिलोक और ईसा । इस रूपक के छंद का नाम चंद ने विराज कहा है परंतु उस का नामान्तर संखा नारी और उस का लक्षण यह हैं –

इकं दीह एकं। दुती दीह केकं ॥
भगत्तं सुचक्की। दियो लच्छि वक्की ॥ ६५ ॥
इकं चोख अथ्थं। करै नाक नथ्थं ॥
सुभक्ती सुमत्ती। जलं माहि पत्ती ॥ ६६ ॥
धरै आक सीसं। चिले केस ईसं ॥
चयं वेद जक्की। प्रियं चंद भक्की ॥ छं० ॥ ६७ ॥ रू० २८ ॥

शंकर की स्तुति ॥

दूहा ॥ नमस्कार संकर कियौ। सरसैं बुधि कवि चंद ॥
सति लंपट लंपट नवो। अबुधि मंच सिसु इंद ॥
छं० ॥ ६८ ॥ रू० ॥ २९ ॥
साधन भोग सँयोग रजि। मंडन आव अखूट ॥
नमो उमा उर आभरन। जय बंधन जट जूट ॥
छं० ॥ ६९ ॥ रू० ॥ ३० ॥
विराज ॥ जटा जूट बंदं। लिलाटंत चंदं ॥
बिराजंत छंदं। भुजंगी गलिंदं ॥ ७० ॥
सिरो माल इंदं। गिरीजा अनंदं ॥
सिरै सिंघि नद्दं। रनं बीर मद्दं ॥ ७१ ॥
करो चर्म सद्दं। करं काल खद्दं ॥
उनैं गंग चद्दं। चखी अग्गि दद्दं ॥ ७२ ॥
प्रलै जानि जद्दं। जयो जोग सद्दं ॥
घटा जानि भद्दं। जरै काम नद्दं ॥ ७३ ॥
हरै चाहि बद्दं। रचै मोह कद्दं ॥
बचै दूरि दद्दं। नटे भेख रद्दं ॥ ७४ ॥
नमो ईस इंदं। बदै भट्ट चंदं ॥ छं० ॥ ७५ ॥ रू० ॥ ३१ ॥

छहे वर्णं वारो। यगन्ने दुधारो ॥
रचो पाव-च्चारी। करो संखनारी ॥ श्रीधर कवि कृत पिंगल ॥

३० पाठान्तर-सरसै। सती। संजोग ॥

३१ पाठान्तर-गिरिजा। रनै। वीर। खद्दं। गंगहद्दं। हद्दं ॥ सद्दं ॥ इस रूपक का छंद ७५ चंद की संस्कृत काव्य-सम-श्लोकार्द्ध शैली का दूसरा उदाहरण है। देखो टिप्पण १४ को॥

दूहा ॥ करिये भक्ति कवि चंद हर । हरि जंपिय इह भाइ ॥
ईस स्याम जू जू कहै । नरक परंतह जाइ ॥
छं० ॥ ७६ ॥ रू० ॥ ३२ ॥

श्लोक ॥ परात्परतरं यांति । नारायण परायणं ॥
न ते तत्र गमिष्यंति । ये दुष्यंति महेश्वरं ॥
छं० ॥ ७७ ॥ रू० ॥ ३३ ॥

साटक ॥ गंगाया भगुलत्त वसन्न मसनं,लच्छी उमा दोवरं ॥
संखं भूत कपाल माल असितं, वैजंति माला हरी ॥
चर्मे मध्य विभूति भूतिक युगं, विभ्भूति माया क्रमं ॥
पापं विहरति मुक्ति अप्पन वियं, वीयं वरं देवयं ॥
छं० ॥ ७८ ॥ रू० ॥ ३४ ॥

कवि की आशा का स्वरूप वर्णन ॥

गाहा ॥ आसा महीव कव्वी । नव नव क्रित्तीय संग्रहं ग्रंथं ॥
सागर सरिस तरंगी । वोहथ्ययं उक्तियं चलयं ॥
छं० ॥ ७९ ॥ रू० ॥ ३५ ॥

चंद का काव्य समुद्र कैसा है ॥

दूहा ॥ काव्य समुद्र कवि चंद कृत । मुगति समप्पन ग्यान ॥
राजनीति वाहिथ्थे सुफल । पार उतारन यान ॥
छं० ८० ॥ रू० ॥ ३६ ॥

छंद प्रबंध कवित्त जति । साटक गाह दुहथ्थ ॥
लहु गुर मंडित खंडिय हि । पिंगल अमर भरथ्थ ॥
छं० ॥ ८१ ॥ रू० ॥ ३७ ॥

३२ पाठान्तर-करिये।
३३ पाठान्तर-यांति। जे यह श्लेक चंद के शुद्ध संस्कृत काव्य रचन का प्रथम उदाहरण है॥
३४ पाठान्तर-भगुलत्त। वसनमसनं। लछी। कपालमाल। चमभूतिक्रियुगं। मायाक्रमं। मुक्तिं। वरंदेवयं॥
३५ पाठान्तर-क्रित्ती॥
३६ पाठान्तर-ग्यांन। यांन।
३७ पाठान्तर-भरत्थ।

कोई अशुद्ध पढ़नेवाला चंद को काव्य-संबन्धी दोष न दे ॥

कवित्त ॥ अति ढंक्यौ न उघार । सलिल जिमि सिष्षि सिवालह ॥
वरन वरन सोभंत । हार चतुरंग विसालह ॥
विमल अमल वानी विसाल । बयन बानी वर ब्रंनन ॥
उक्तिन बयन विनोद । मोद श्रोतन मन हर्नन ॥
युत अयुत जुक्ति विचार विधि । वयन छंद कुच्यौ न कह ॥
घटि बढ्ढि मति कोइ पढइ । तौ चंद दोस दिज्जो न वह ॥
छं० ॥ ८२ ॥ रू० ॥ ३८ ॥

इस ग्रंथ में चंद ने क्या क्या कथन किया है ॥

श्लोक ॥ उक्ति धर्म विशालस्य । राजनीति नवं रसं ॥
षट् भाषा पुराणं च । कुरानं कथितं मया ॥ छं० ॥ ८३ ॥ रू० ॥ ३९ ॥

रासो को रसिया सरस उच्चारैं ॥

कवित्त ॥ चरन नीम अच्छिर सुरंग । पाट लहु गुरु विधि मंडिय ॥
सुर विकास जारी सु मुष्य । उक्ति रस गौरव नि छंडिय ॥
जुगति छोह विस्तरिय । सीढियन घाट सु बद्दिय ॥
मद्दि मंडन मेधान । याद्दि मंडन जस सद्दिय ॥

३८-पाठान्तर-पिष्षि । विशाल । विच्चार । पढई । दिज्जो । दिज्जै ।

३९-कवि का यह संस्कृत श्लोक हमारे पाठकों के सदा ध्यान में रखने योग्य है । इस के सूक्ष्म विचार से हम जान सकते हैं कि षटभाषा और कुरान की भाषा के जो जो शब्द इस महाकाव्य में प्रयोग हुए हम देखते हैं वह कवि ने जानकर प्रयोग किये हैं और कुरान की भाषा शब्दों के प्रयोग का विषय कोई आश्चर्यदायक भी नहीं है क्योंकि मुसलमानों का प्रवेश भरत-खंड में शहाबुद्दीन ग़ोरी के बहुत ही पहिले हो गया था । इस के अतिरिक्त हम को यह भी निश्चय मानना चाहिये कि चंद संस्कृत भाषा में निपुण था और षट्भाषा और कुरान की भाषा से भी अपरिचित नहीं था और जो जो छंद इस महाकाव्य में संस्कृत भाषा में लिखे हमारे दृष्टि आते हैं वे उस की संस्कृत-काव्य-रचन शक्ति के उदाहरण रूप हैं । यह श्लोक चंद के माने हुए पिंगल छंदसूत्रम् के अनुसार लौकिक अनुष्टुप अर्थात् अष्टाक्षर पद छंद है । इस रूपक के विशेष पाठान्तर अन्य पुस्तकों में दृष्टि नहीं आते किन्तु केवल विशालं के स्थान में विसालं और पुराणं के स्थान में पुरान पाठ हैं ॥

४० पाठान्तर-अच्छिर । सुरंग । समुष्यं । मुष्य । गौषिन । सिढियन । मेधान । याद्दि । चित्ररंग । विश्वकर्म कर्म । उच्चारिय ।

घन तर्क उतर्क वितर्क जति । चित्त रंग करि अनुसरियं ॥
विश्वकर्म कवि निर्मइय । रसियं सरस उच्चरिय ॥
॥ छं० ॥ ८४ ॥ रू० ॥ ४० ॥

रासो का तत्त्वज्ञान कैसे होगा ॥

अरिल्ल ॥ तर्क वितर्क उतर्क सु जत्तिय । राज सभा सुभ भासन भत्तिय ॥
कवि आदर सादर बुध चाहौ । पढि करि गुन रासौ निर्बाहौ ॥
॥ छं० ॥ ८५ ॥ रू० ॥ ४१ ॥

धर्म्म अधर्म्म न बुद्धि बिचारौ । नयन नारि निय नेह निहारौ ॥
कोक कला कल केलि प्रकासौ । अरथ करौ गुन रासौ भासौ ॥
॥ छं० ॥ ८६ ॥ रू० ॥ ४२ ॥

फागसर जो पुत्त विहासह ॥ सतवंती ग्रभ्भं गुर भासह ॥
प्रब्ब अठार सवा लष लष्षै । तौ भारथ गुर तत्त विसष्षै ॥
॥ छं० ॥ ८७ ॥ रू० ॥ ४३ ॥

जो रासो को सुगुरु से पढ़ता है वह कुमति नहीं दरसाता ॥

कवित्त ॥ रासौ वर बुद्धि सिद्धि । सुद्धि सो सब्ब प्रमानिय ॥
राजनीति पाइयै । ग्यान पाइयै सु जानिय ॥
उकति जुगति पाइयै । अरथ घटि बढि उन मानिय ॥
या समान गुन रूपं । देव नर नाग बखानिय ॥
भविहत भूत ब्रतह गुनित । गुन त्रिकाल सरसइय ॥
जो पढय तत्त रासौ सुगुर । कुमति मति नहिं दरसइय ॥
॥ छं० ॥ ८८ रू० ॥ ४४ ॥

४१-४३-इस रूपक के छंद का नाम कवि ने अरिल्ल प्रयोग किया है कि जिस का लक्षण यह है-

अरिल्ल ॥ लघु दीरघ को नेम न कीजे । ऐसे ही तुक चार भरीजे ॥
षोडश कला कली बिच धारैं । छंद अरिल्ला शेष उच्चारैं ॥

पाठान्तर -सुजतिय । मतिय । पढ़ि शब्द के पहिले तौ शब्द का पाठ पुस्तकान्तर में विशेष है । पटि । नारिनिय । कौक । कलाकल । अरथ शब्द के पहिले तौ शब्द किसी किसी पुस्तक में विशेष है । ग्रभं । लष्य । लष्यै । नारथ ॥

४४ पाठान्तर -राज्ञ । नीति । पाई । उक्ति । पाइयै । पाईयै । उन मानिय । व्रतह । सरसइय शब्द के पहिले किसी किसी पुस्तक में मध्य शब्द का विशेष पाठ है । सरसईय । दरसईय ॥

रासो किस को अच्छा और किस को बुरा प्रतीत होता है ॥

दूहा ॥ कुमति मति दरसत तिहिं। बिधि विना न अब्बान ॥
तिहिं रासौ जु पवित्त गुन। सरसौ ब्रह्म रसान ॥
छं० ॥ ८९ ॥ रू० ॥ ४५ ॥

इस ग्रंथ के काव्य की संख्या का कथन ॥

दूहा ॥ सत सहस नष सिष सरस। सकल आदि मुनि दिष्य ॥
घट बढ मत कोऊ पढौ। मोहि दूसन न वसिष्य ॥ छं० ॥ ९० ॥ रू० ॥ ४६ ॥

रासो के ढँके हुए अर्थ के विषय में कवि का कथन ॥

गाहा ॥ अरथं ढंकिन सहसा। उघारै वनष्यि एकलया ॥
मझ्झं मझ्झ प्रमानं। चतुर स्त्री हारयं जेमं ॥ छं० ॥ ९१ ॥ रू० ॥ ४७ ॥

इस ग्रंथ के विषय का संक्षेप कथन ॥

कवित्त ॥ दानव कुल छत्रीय। नाम ढूंढा रष्यस बर ॥
तिहिं सु जोत प्रथिराज। सूर सामंत अस्ति भर ॥
जीह जोति कवि चंद। रूप संजोगि भोगि भ्रम ॥
इक्क दीह ऊपन्न। इक्क दीहै समाय क्रम ॥
जथ कथ्थ होइ निर्मये। जोग भोग राजन लहिय ॥
बज्जंग बाहु अरि दल मलन। तासु कित्ति चंदह कहिय ॥
छं० ॥ ९२ ॥ रू० ॥ ४८ ॥

अरिल्ल ॥ प्रथम राज चहुवांन पिथ्थ बर। राजधान रंजे जंगल धर ॥
मुष सू भट्ट सूर सामंत दर। जिहि बंध्यो सुरतांन प्रात भर ॥
छं० ॥ ९३ ॥ रू० ॥ ४९ ॥

---

४५ पाठान्तर-दर्सन। तिहि। तिहि। रसानं ॥

४६ पाठान्तर-कोऊ ॥ इस में "सत सहस" से कवि एक लाख की ग्रंथ संख्या बताता है और यह भी कहता है कि घट बढ पढ करके मुझे दोष मत देना। कोई कोई कवि जो यहां सत शब्द से सात का अर्थ अनुमान करते हैं वह हमारी सम्मति में अयुक्त प्रतीत होता है ॥

४७ पाठान्तर-ढकिन। नखुष्यि। मझ। मझ।

४८-५० पाठान्तर-रष्यस। तिहि। जिह। संजोगी। भोगी। उपन्ने। जोगराज। नाल-हिय। वज्रङ्गबाहु। अरि दल मलन। कुती। चंद्र ॥ ४७ ॥ सुर ॥ ४८ ॥ मित। वंधो। कित्ति। अष्यो। तिथि ॥ ४९ ॥

अरिल्ल ॥ छं कवि चंद मित्त सेवह पर । अरु सुचित सामंत सूर बर ॥
बंधौं किति प्रसार सार सह । अखों बरनि भंति थिति थह ॥
छं० ॥ ९४ ॥ रू० ॥ ५० ॥

राजा परीक्षित की तक्षक दंशन और जन्मेजय की सर्पसत्र कथा ॥

हनुफाल ॥ इति हनूफालय छंद । कल बरनि बरनि सुछंद ॥
नहि नाल पिंगल जोर । दुज हूँतो दुजनिय भोर ॥ ९५ ॥
संसार बंधन दोथ । इक पछ्यौ विद्य समोथ ।
तन देह अच्छर एक । नहिं पिंग पिंगल मेक ॥ ९६ ॥
किहि काल मरन सुविप्प । लहि नाग रूप सु अप्प ॥
हरि हय्यौ बाहन धाइ । तिहिं कह्यौ पिंगल चाइ ॥ ९७ ॥
दै विद्य रूप सु छंड । सो गयौ छल करि सद्ध ॥
सो तच्छ बीर प्रमान । जुग जुगनि निश्चल ध्यान ॥ ९८ ॥
इक हुतो सिंगिथ रिष्य । तप करै बाल विसिष्य ॥
नृप गयौ बर आखेट । दिषि अप्प मृतक बेट ॥ ९९ ॥
बाराह रूप प्रमान । लग्गयौ सु ब्रह्म घिथान ॥
दह बार बूझ्यौ राज । दुज दिय न उत्तर काज ॥ १०० ॥
लखि चित्त चिच सपूत । यों भयो रिष अवधूत ॥
भयो ताम तामस राज । लियौ गोन मंच बिराज ॥ १०१ ॥
कम्मान् कोनक संधि । नृपराज दुज गलबंधि ।
फिरि गयो ग्रंह प्रमान । आयो सु बालक थान ॥ १०२ ॥

५०[*] दृष्टि में रखने की बात है, जैसे महाभारतादि महापुराणों में समग्र ग्रंथ के आशय का सार एक अथवा दो अथवा तीन अथवा चार श्लोकों में वर्णन किया गया है वैसे ही चंद ने भी अपने इस महाकाव्य का सार इन (४८ से ५० तक) तीन रूपकों में वर्णन किया है ॥

५१ पाठान्तर—हनुफाल । हनूफाल । विद्यस । मोय । न । न । अछर । हयो । तिहिं । चायि । दे । तछ्य । जुगिनि । हुंतो । रीष्य । बालवि । सिष्य । बुझ्यौ । दियउ । चित्र । चित्रस । कोनक । नवि । तुल्लि । तिहिं । अति लोल दिख्खि रिषि लोइ । लोई । सुमोई ॥

हमारे पाठकों को ध्यान में रखना चाहिये कि चंद कवि ने इस कथा को महाभारत के आदि पर्व के अध्याय ४९ से ५८ तक और भागवत के पहिले स्कंध के अध्याय १८ और १९ और दूसरे स्कंध के पहिले १ अध्याय से उद्धृत और संक्षिप्त करके वर्णन किया है । यदि कोई इस कथा

खिजि कह्यौ नैन भरीव । तम ताम रूप सरीव ॥
पै जुन्न बालक बुझि । गलि गर्भ क्यौं न चितुझि ॥ १०३ ॥
तिहि तजिय तात ह्मान । धरि कोप अंग निधान ॥
करि क्रोध अंखि सुरत्त । हविजानि लग्गिय लत्त ॥ १०४ ॥
जिहि जियत गुचह अप्प । को तात लभ्भय दप्प ॥
रिस करौं जोव प्रमान । जरै तीन लोक्क अमान ॥ १०५ ॥
रिस तेज कंपत बाल । दिष्यौ सु तात विसाल ॥
वह लग्गि ब्रह्म धियान । भयौ कोटि तामस नाम ॥ १०६ ॥
अति ना रत्न दिखि रिखि लोइ । दिख्यो सु तात समोइ ॥
छं० ॥ १०७ ॥ रू० ॥ ५१ ॥

कवित्त ॥ जोरि हथ्थ थुति मंच । फिरयौ पर दच्छि लग्गि पय ॥
रुधिर नयन आरक्त । कंठ लग्गयौ सु मुक्कि भय ॥
भूत द्दार वीभार । गाजि आये सुत मग्गं ॥
भर भर भर उच्चार । रोस दावानल लग्गं ॥
जिहि हह्यौ अप्प मो तात गर । गनिव सत्त दिन में प्रमति ॥
जो हत्यो अप्प तच्छक सुब्रत । कै काया अब्रत सुगति ॥
छं० ॥ १०८ ॥ रू० ॥ ५२ ॥

साटक ॥ धंन्यो धंन्य सु बाल तापन तपं । बालं बलं विव्हलं ॥
सोयं पुच कि सोस दोस चिविधं । बानीय गद् गद् गलं ॥
एनं भूप विसाल भूमि भरतं । धर्म्मं धरा राजनं ॥
तं तेजं नवि चोर व्याघ्र विघनं । नैवापि संतापयं ॥
छं० ॥ १०९ ॥ रू० ॥ ५३ ॥

और चंद के काव्य को उक्त भारत औ भागवत से मिलाकर सूक्ष्म विचार कर देखे तो वह निः-संदेह यह अनुमान कर सकता है कि चंद संस्कृत भाषा अच्छी जानता था और यह बड़े बड़े ग्रंथ भी उसके पढ़े हुए थे क्योंकि चंद के कोई कोई छंद उक्त ग्रंथों के श्लोकों के ठीक अनुवाद प्रतीत होते हैं। इस च्हनूफाल छंद के चारों पाद बारह बारह मात्रा के होते हैं ॥

५२ पाठान्तर-फिर्यौ । लग्यो । विभार । जाजि । आइय । आईय । हत्यो । प्रमत्ति । प्रमित्त केकाया । सुवति ॥

५३ पाठान्तर-धन्यो धन्य । तनं । बाल । भरनं । तेजंन । विचोर । विघन ॥

दत्वा श्राप मिदं श्रुतं गुरु वरं । मृत्यं च राजा नयं ॥
सत्यं सप्त दिनानि पानि पवरं । नैवं चलंते पयं ॥
त्वं श्रापं चय लोक जालति वरं । भुक्ते बरं पुचयं ॥
एकं दीह सुतप्प प्रापति पदं । त्रैलोकयं चासयं ॥
छं० ॥ ११० ॥ रू० ॥ ५४ ॥

दूहा ॥ सब रिखि में मो पुच तू । बय दिक्खौ परमान ॥
मानहु उम्बर में उदै । बढति कला वर भान ॥
छं० ॥ १११ ॥ रू० ॥ ५५ ॥

कवित्त ॥ पुच छंडि रिखिराज । जाइ न्रप थान सु बत्ता ॥
पंथ कुलह संग्रह्यौ । रिष्षि आपान विरत्ता ॥
अति सु दीन सिर नीच । ऊंच नहिं भाल उचाइय ॥
दिष्ठि दिष्ट राजन चरित । मंगन न्रव आइय ॥
एकंग एक जोगिन्द्र वर । धातु न बंधे हथ्थ पर ॥
करि काजं रिष्षि आयौ घरहि । उरह धरड्डर लग्ग डर ॥
छं० ॥ ११२ ॥ रू० । ५६ ॥

गाहा ॥ जो जंप्यो रिष पुत्तं । प्रलयं होइ सत्तियं कालं ॥
जं भावइ तं ध्रम्मं । सो किज्जै राजनं बलयं ॥
छं० ॥ ११३ ॥ रू० ॥ ५७ ॥

त्रोटक ॥ न्रप छंडि प्रजंक प्रजंक पला । मुहु मुंदिरु भानक मोद कला ॥
न्रप दीन चल्यौ बहु चित्त चितं । सुहल्या जनु पोंनय पीप पतं ॥
॥ छं० ॥ ११४ ॥

पतनं गुरु जानि चरन्न लग्यौ । बहुस्यां रिषिराज सु प्रान दग्यौ ॥
छं० ॥ ११५ ॥ रू० ॥ ५८ ॥

५४ पाठान्तर-म्रतंच । मत्यंच । पानिपवरं । पय । श्रांप ह्वालति । तैलाकयं ॥

५५ पाठान्तर-मै । मे । तूं । परवान । संवत् १६४० की पुस्तक में हमारा लिखा पाठ है और इतर पुस्तकों में "मानहु इदी वर उदै" है ॥

५६ पाठान्तर-जाय । संपत्तो । आपन । ऊंच । नह । नहि । द्रिष्ट । न्रप । आईय । जोगिन्द । हथ । किहि । घरह । उर । घर । ग्रड्डर । लगि ॥

५७ पाठान्तर-जो । झंप्यो । पुत्तं । भावै । भाव । इतं । जो । कीजे ॥

५८ पाठान्तर- विप । न्रप । फला । इला । मुहुमंदिरु । भान । कमोद । न्रप । बहुचित्त । जनु । पोनय । बहुयौ । किसी पुस्तक में सु शब्द नहीं है ॥

गाहा ॥ मनो रिषि हथ्थं प्रानं। वल्लीकं जीवनं गुरयं ॥
जो फल लग्यौ पच्छ। तौ कालं रिष सो बरयं ॥
छं० ॥ ११६ ॥ रू० ॥ ५९ ॥

दूहा ॥ इय चिंतय रिषि राज गुर। पुच्छिय अन रिष राज ॥
क्यौं उधार होइ आप बर। कहो कृपा करि आज ॥
छंद ॥ ११७ ॥ रू० ॥ ६० ॥

कवित्त ॥ मद भंडी इक पुरुष। निसा भइव अध रत्ती ॥
वरगना अंगने। डस्यौ अहि परम धरत्ती ॥
सुरापान आमिष्य। गह्यौ करहुं तब कुट्टिय ॥
उच्चारत हा राम। जाय वैकुंठ सु ठट्टिय ॥
परताप नाम सद गति भइय। कीर कहत परिषत्त सुन ॥
भागवत्त सुनहि जो इक्क चित। तौ सरात कुहय अक्रम ॥
छंद ॥ ११८ ॥ रू० ॥ ६१ ॥

ज दिन आप तुहि भयौ। न दिन परिसोक घर घर ॥
पसू पंषि जल छंडि मुनिवर समाधि उर ॥
छंडि चक्क हरि रष्षि। कूष तूं मात परिष्षत ॥
पंडव वंस प्रतष्ष। तषत भ्रम धारी दिष्षत ॥
अचरिज्ज कहा तुम उद्धरन। होइ प्रसन सुकदेव कहि ॥
दिन सत्त अवधि अंतर बहुत। हरि सु उद्धरै छिनक महि ॥
छं० ॥ ११९ ॥ रू० ॥ ६२ ॥

धरनि रूप करि धेन। भ्रम्म बक्करा संग लीयै ॥
झारषंड महि चरत। देषि कलियुग कुपि हीयै ॥
चरन तीन भज्जंत। प्रजा सब आय पुकारिय ॥
चढि करि तें न्टपराज। वथ्थ परि ताहि बक्कारिय ॥

५९ पाठन्तर-प्रान। वलीकं। लगौ। पक्छू। पछं। तो ॥ इस के छंद का नाम सं० १६४७ की पुस्तक में गाथा है ॥

६० पाठान्तर-चिंतन। रिषिराज। पुछिय। होय। आप ॥

६१-६३-ये तीन रूपक सं० १७७० और सं० १६४७ की पुस्तक के अतिरिक्त उससे पीछे की जितनी पुस्तक अब तक हमारे देखने में आई हैं उन सब में हैं परन्तु जब तक उन से भी पहिले की पुस्तकें न प्राप्त हों तब तक इन रूपकों को हम निश्चय रूप से क्षेपक नहीं कह सकते इनके

किहि कीर अंग लग्गौ परस । तिहि कारन इह उपज्जिय ॥
आषेट जाय पन्नग मृतक । सिंगी, गर घतिय, षिज्जिय ॥
छं० ॥ १२० ॥ रू० ॥ ६३ ॥

चोटक ॥ इति चोटक छंद सुमंत गुरं । दिन सात पर्यौ हरि गंग कुरं ॥
त्रितकाल विकालह चित्त धरं । क्रित पत्त क्रिमा पिबु लाइ भरं ॥
छं० ॥ १२१ ॥

नृपराज परीछत तत्त गुरं । धरि ध्यान कह्यौ बदलीष धरं ॥
इन काल सु तप्पय देव नरं । नृप ग्यान सुन्यौ वपु व्यास वरं ॥
छं० ॥ १२२ ॥ रू० ॥ ६४ ॥

साटक ॥ या विद्या बदलीत राजन गुरं । आपो रिषं तारयं ॥
शून्यं राज सु इन्द्र धारन धरं । विद्या अमारा पुरं ॥
ग्रम्भौयं सुघनं तु मातुल इयं । मोहं हरित्तारयं ॥
सो ध्यानं रिषिराज राजन वरं । पापाग्रहारं परं ॥
छं० ॥ १२३ ॥ रू० ॥ ६५ ॥

चौपाई ॥ अति किसलय सुस कोमल अंग । जानु कि मुक्किय देषिय अंग ॥
किष्ण दिपायन दीपन व्यास । कोपिन एकिन मंडल चास ॥
छं० ॥ १२४ ॥ रू० ॥ ६६ ॥

दूहा ॥ क्रिसनदीप दीपायनह । कही रिषी सब बत्त ॥
जु कक्कु सराप सु उद्धयो । परनराज गुरु गत्त ॥
छं० ॥ १२५ ॥ रू० ॥ ६७ ॥

कवित्त ॥ तितै आय बर ब्रह्म । अप्प रिषि रिषि सु पुकारं ।
कै तच्छक नृप हतहु । न तरु तच्छक मर धारं ॥

पाठान्तर ये हैं–अधरत्ती । वारंगन । अंग । ने । काहुं । भगवंत्त । जोइ क्कचित ॥ ६१ ॥ जदि । न । तद्दि । न । परिसोक । घर । रबि । परीवत । प्रतष्य । प्रतषि । प्रसन्न । धम । संग । लिये । हिये । वष्य । परिताहि । घतिय ॥ ६३ ॥

६४　पाठान्तर–तोटछंद । क्रिलं । पिबुलाइ । त्रितक्काल । तत । नून ॥

६५　पाठान्तर–गुरु । यम्भोयं । सुधनं । मातुल । तारयं । ध्यान । राजं ॥

६६　पाठान्तर–सु । सक्कोमल । देहीय । अयंग । किस्ना । दीर्पायन । चन्द्रायना ॥

६७　पाठान्तर–रषी । वत । जु । उधयौं । आगत्त ।

६८　पाठान्तर–तछक । हतहुं । तजक । भई । भइय । मान । तो । निधान । धरि । चित । ध्यान ।

उभय चित्त चिंतयौ। भइय श्री नाग सु मानं ॥
न्टप न हतौ तौ मरन। अचित न्टप रिष्य निधानं ॥
दुत्र भंति चित्त चिंता सुचित। धरिथ ध्यान चित जान जिय ॥
सत विप्प आइ लिय बोर बर। आय हथ्य राजन सु दिय ॥
छं ॥ १२६ ॥ रू० ॥ ६८ ॥

कवित्त ॥ दिय हथ्थं मधि कीट। सुफल लेइ राजन धारिय ॥
कल लंछन लागंत। निकरि कीटं छित कारिय ॥
छिनक मधि बाढंत। भए फुनि पंचनि नारिय ॥
न्टपथ हुकम मुष दियौ। कनौ सो काम करारिय ॥
फिरि आय राथ दिष्टह बचिय। कम्म मद्दि उसनह फनिय ॥
जं जाह जीह कलि हंस हत। भइय देह ब्रन अघ्यनिथ ॥
छं० ॥ १२७ ॥ रू० ॥ ६९ ॥

तब जनमेजय पुत्त। दिहा दच्छिन जन मुक्किय ॥
तहां धन अंतर वैद। दरक चढ़ि लैन सु तक्किय ॥
करिय षेद चलि अप्प। सहस चेला संग धारिय ॥
आस्तीक जु धुर नाग। तब सु तक्कक विचारिय ॥
छल तक्कि रूप लकुटी भइय। ग्रहिय गुरु पुट्ठे डसिय ॥
भष काज सिष्य सिष्यां दइय। विप्र रूप तक्कक हँसिय ॥
छं० ॥ १२८ ॥ रू० ॥ ७० ॥

दूहा ॥ आस्तीक जु गुर वैर कजि। पढि विद्या ग्रह नाग ॥
जनमेजय व्रिप सों मिलिय। मंड्या अप्पन जाग ॥
छं० १२९ ॥ रू० ॥ ७१ ॥

---

६९ पाठान्तर-भंरा। किसी किसी पुस्तक में सो शब्द का पाठ नहीं है। आई राइ। दिष्ट। भईय। भईये ॥

७० पाठान्तर-दच्छिन। जनम। किय। धन। अंबरवेद। सुत। किय। तिक्षक। छलन। कि। भईय। युट्ठे। सिव्य। सिष्या। दरह। तक्षक।

७१ पाठान्तर-तिहित। बदस। यत। विप्प्यं। सचारव। रष्यि। जानलु। बात। नृहरिय। मक्ष। होम। मंत। तक्षक। पतौ। कनी। मंत्र ॥

कवित्त ॥ ति छिन वैर सिसु बरन। सपत बिप बोल सु चारव।
नृप जनमेजय नाम। भयौ तामस उत गारव॥
तात वैर सिसु दष्षि। जियन सोइ लोइ बिचारै॥
जानिहु वासन हरिय। मच्छ बंध्यौ जनु जारै॥
होमंत सत्ति तच्छक सु नग। इन्द्र सरन पत्तौ तबै॥
सुनि कन्न राज तामस भयौ। करहु मंत्त साधन सबै॥
छं० ॥ १३० ॥ रू० ॥ ७२ ॥

भुजंगी ॥ करी अस्तुती यं स्वहा इंद्र जोगं। तहा इंद्र आयौ सुरं नाग भोगं॥
इतं देव सादेव सारन्न आयौ। तिनं काटि दीयंत सो पाप पायै॥
छं० ॥ १३१ ॥ रू० ॥ ७३ ॥

कवित्त ॥ अभय दान आतुरह। अंन उग्राह पान दन॥
सरन रष्षि भय नरन। कढ्ढि मुक्त छित्त छंडि सन॥
तय लगि कग्ग कराल। स्वान मसन ज बासै॥
रुधिर चरम अरु असति। बस्त वस्तन ज नासै॥
जौं इय जोइ जग उद्धरै। जननि जाय ग्रभ्भह गरै॥
तिन काज राज प्रारथ्थियै। जियत तक्क तन उब्बरै॥
छं० ॥ १३२ ॥ रू० ॥ ७४ ॥

दूहा ॥ नृप चिंता बहु लग्गि मन। ज्यौं जुथ वाय चिकाल॥
यौं नृप राजन राज कुल। पुनर जनम दुष ज्वाल॥
छं० ॥ १३३ ॥ रू० ॥ ७५ ॥

---

७२ पाठान्तर--करि। अस्तुति। स्वाहा। सारन। तिन। सह॥ इस रूपक के छंद का नाम हम ने शोध करके भुजंगी रक्खा है और सं० १६४० की तथा सं० १७७० की पुस्तकों में भी यही नाम लिखा है किन्तु इतर पुस्तकों में चंद्रायना नाम लिखा है वह अशुद्ध है॥

७३ पाठान्तर-आतुरहै। अन। कढि। मु। कहित। तुम्ह उ। उं। जोइयै। सभह। कारज। प्रार्थिय। उबरै॥

७५ पाठान्तर-त्रिन। पुनरजनम॥

वर्तमान आबू पर्वत के उद्धार की कथा ॥

उस तक्षक का आबू पर अपना अर्बुद नाम धर रहना ॥

कवित्त ॥ स तक्क आबू प्रमान । मंडीयौ सू अचल कर ॥
गरब गहर तें बिडुरि । सुडक्क रष्यौ जु मंत धुर ॥
अचल ईस प्रति ताम । अचल आचित्त अचल घर ॥
देव देव प्रारथिय । इन्द्र मुक्किय कंड्डिय धर ॥
अरबुद नाम धर जुत्तिया । दूर तपित थत्तराइया ॥
कलपान पुहप अरु बस्त गुरु । क्रांच गुरु गुर छाइया ॥
छं० ॥ १३३ ॥ रू० ॥ ७६ ॥

गालव ऋषि के शिष्य उत्तङ्क का उपाख्यान ॥

दूहा ॥ सो आबू उद्धार बिधि । कहैां कथा*परबंध ॥
ज्यौं अनादिआ रिष्य मुष । सुनी सु गुर समबंध ॥
छं० ॥ १३४ ॥ रू० ॥ ७७ ॥

गुरु गालव उत्तंग सिष । बहु विद्या पढ़ि जाम ॥
पय लग्गौ गुर राज कैं । कहौ दक्कना काम ॥
छं० ॥ १३५ ॥ रू० ॥ ७८ ॥

गाथा ॥ गालव रिषि शिष्य उत्तंग । दिय विद्या बुध क्रम क्षेम अंग ॥
गुर दष्षिन कज्जैं गुर जच्चै । गुर पतनी तब मंगिं बिरच्चै ॥ १३६ ॥
कुंडल जच्चि पिचिया कानं । अप्यौ जासु दष्षिना दानं ॥
दिवस अठ्ठमो ब्रत्त अषंडै । चरचों दान विप्र श्रुत मंडै ॥१३७॥

७६ पाठान्तर–सो । ततक्क । आ । चित । बर । मुक्किय । छडीय । जुतिय । तष्पित । छाईया ॥ स=वह का वाचक और तक्ष=सर्प=तक्षक का वाचक जैसे रू० ५१ की ८ तुक में तच्छ प्रयोग हुआ है ॥

७७ पाठान्तर–रिष्य ॥

७८ पाठान्तर–उतंग । जास । के । दछना ॥

* हमारे पाठकों को ध्यान में रखना चाहिये कि चंद अर्बुद के उद्धार की कथा अर्बुद खण्ड अर्थात् आबू माहात्म्य नामक संस्कृत ग्रंथों से संग्रह करके वर्णन करता है । जिन पाठकों के पढ़ने में अथवा सुनने में ये ग्रंथ आए हैं वे जान सकते हैं कि कवि ने थोड़े में बहुत ही आशय लिया है और उत्तङ्क का उपाख्यान महाभारत के आदि पर्व के पौष्यपर्वाध्याय नामक द्वितीय अध्याय में से भी कवि ने संग्रहीत किया है ॥

७९ पाठान्तर–उत्तंग । दछिन । गुरपतनी । मंगि । दछिना । अषंडे । मंडे । करे । संपनो । त्रिप । प्रसंसे । ससप्यै । तष्यक । बीच । रषै । अंचल । दषै । दषे । ठठो । ताम बिराम ।

चल्यौ रिष्षि चमंके ताम। गुर गुरनी कों करै प्रनाम॥
चिंतत दुष्ट चल्यौ बर राहं। संपत्तौ यों सद न्रप ठाहं॥ १३८॥
जच्छ कुंडल षिचिय पासं। सोइ समप्पै बिधि बर तासं॥
विप्र प्रसंसै समपे कुंडल। कहि डर तच्छक बीच नीच षल॥ १३९॥
लै कुंडल चल्यौ हरषे मन। अाप्यौ राज विप्र अन्यो अन॥
कम्यौ विप्र राह चंचल चर। छलि तच्छक लीने कुंडल वर॥ १४०॥
क्रमयौ विप्र पुट्ठि अति चंचल। धरि अहि रूप सु गयौ रसातल॥
बिल दूष्ष्यै ठढ्ढौ रिषि तामं। दुमत चित्त भय विहत विरामं॥ १४१॥
अस्तुति इन्द्र करन लग्गौ रिषि। नंष्यौ बासव षिनक वज्र सिषि॥
ब्रित अम्रित दीयौ आषंडल। धर रिषि तक्कि षात बिल मंडल॥१४२॥
पैठो बिप्र नागपुर ठाभं। धोम प्रगट्टै मंच विरामं॥
दूष्यौ पुरुष एक षट आरं। फेरे चक्र तास फिरि तारं॥ १४३॥
दूष्यौ बाह बाह सत बारं। उंच तेज आजेज अपारं॥
यों नर नारि अषै बर नामं। वे अह हथ्थ वेई सम कामं॥ १४४॥
चिसत सट्ठि तां तंति ठायं। अद्ध सेत्त स्यामं अध तायं।
अहि धुत्तेन उपाइ सबाहं। फुंकन पुंक्ष सधुम्म सराहं॥ १४५॥
पुंकन पुंक्ष धार धुस चल्ली। लग्गै नाग अंग सह थल्ली॥
प्रगटे अंसू पलक उध धत्ति। अप्यो कुंडल नाग मान हति॥१४६॥
ग्रिह कुंडल अप्पे गुर धामं। गुर विद्या अप्पी अभिरामं॥
दुज बर ब्रज्ज पैठ जेहा धर। बिल अध्रित तिह थांन मंडि थिर॥
छं० ॥ १४७ ॥ रू० ॥ ७९ ॥

दूहा॥ बिल अथाह निहि थान भय। वहुन संवक्कर वित्त॥
प्रथुल कराल कराल भौ। जिम जिम काल बितित्त॥
छं० १४८ ॥ रू० ॥ ८० ॥

वज्रं । आम्रत । दियो । रिक्कि । पैठो । बेठौ । घोमं । ठाम । विराम । फेरै । वाह । जो । तामं । बे । हथ । वे । ईस । मकामं । बेइम । सठि । ता । तंति । ठायं । उपाय । स्याम । धुत्तेन । फूंकत । सधुम । धुम । लगे । यली । अंशू । कुंड । अप्यौ । हित्ति । मनि । यही । रांभं । पेठि । आभ्रेत । अभ्रित ।

८० पाठान्तर-वित । प्रिथुल । प्रयार । विवित ॥

वशिष्ट ऋषि का आबू पर तप करना और उन की नंदनी गौ का अथाव बिल में गिरना ॥

पद्धरी ॥ किहि समय नाम वाचिष्ट रिष्षि ॥ धर अटन करत सम आइ सिष्य ॥
सिवपुरि सु सोभ तारन्न जन्न । सुभ थान इष्य आमोद मन्न ॥ १४९ ॥
बर द्रुष्षि ठाम विश्राम ताम । अनेक रिष्षि किय तत्त विश्राम ॥
तिहिं समय चरंतिय होम धेन । सामीप समंपी बिलह तेन ॥ १५० ॥
अध द्रुष्षि द्रुष्षि भ्रंमेव गाव । मुक्केव परिय मझि बिल अथाव ॥
हुअ होम काल आवी न धेन । चिंतै सु रिष्षि कारन्न केन ॥ १५१ ॥
बल जंप्प लह्यौ गो पात थान । तहां गयो रिष्षि सिष्यह समान ॥
उत्कंठ बिलह ठढ्यौ सु रिष्षि । नंदिनिय नाम कहि सदिति सिष्षि ॥१५२॥
क्रन्दन्न गाव संपत्त वच्च । हंभार कियौ सुर उच्च तच्च ॥
सुन्ने वचन्न सावच्छ भ्रम्म । चिंत्ते सु रिष्षि निक्कास क्रम्म ॥
छं० ॥ १५३ ॥ रू० ॥ ८१ ॥

वशिष्ट ने अपनी गाय निकालने को गंगा का आह्वान किया ॥

दूहा ॥ चिंत अनेकह विधि विवर । बिल नंदिनी निकास ॥
मंच रूप गंगा तवन । लगो करन रिष तास ॥
छं० ॥ १५४ ॥ रू० ॥ ८२ ॥

भुजंगी ॥ नमो देवि गंगे जयो मात गंगे । द्रवै रूपंका मंडलं ब्रह्म संगे ॥
चयं पथ्थ चेयं गुनं ते निवासं । वरं वृंद वृंदारका सेव जासं ॥ १५५ ॥
हिमं सैल भेदे सु भेदे धरायं । सजै रूप कायं सुरीयं नरायं ॥
मधू छेदनं पाय प्रावेस कारी । सतं मुष्य सामुष्य सामुद्र धारी ॥ १५६ ॥
चली सेत झल्ली जलड्डी समुद्दं । अ रै सेष षीरं सु मानौ समुद्दं ॥
धराचल्लि भागीरथी विश्व भागं । मिटै अघ्घ ओघं तनं दुष्य दागं ॥१५७॥

---

८१ पाठान्तर-वासिष्ट । सिव । पुरिस । सपच्च । दृषि । भ्रमेव । सपतीय । मुजेव । परित । हबिल । आव्रीत । व्रीन । आव्रीत । चितै । गोपात । सिष्यहि । उतकंठ । ठठ्ठो । सदति । क्रवेन । व्रवेन । क्रनेव । संभार । रंभार । दंभार । ऊंच वचन । सावछ । भ्रम । चित्तै । रष्षि निरक्कास । क्रम ॥

८२ पाठान्तर-अनेक । ह । निकासी लगौ ॥

सुभं उच्च अंदोल बीचं बिराजं। मनो स्तुग्ग आरोह सोभानं साजं॥
नरं नीच नीरं तटं श्रोन प्रम्मं। तबै अग्ग देवं गुनं अब्ब अम्मं॥ १५८॥
परै मभ्भ कल्लेवरं धंपि कुट्टी। भषी काश्लं गिद्धि गोमाय लुट्टी॥
तटं श्रोन भल्लै थलं वारि हल्लै। षिनं मभ्भि अंदोल वीचं वहल्लै॥१५९॥
तिनं आतमं देह आनूप धारै। वरं उर्वसी चामरं बिंभ नारै॥
धरै ध्यान भावं तिनं दुक्ख दब्बै। मिटै मज्जनं अघ्घ साजेम सब्बै॥१६०॥
झलक्कंत गंगा तनं तेज सोहै। मनो दाहनं दाह दाहंन्न जो है॥
सुयं गंग गंगे सु गंगा प्रकारं। हरै नाम गंगा जमं किं करारं॥ १६१॥
त्रिपथ्थी त्रिगामी विराजंत गंगा। महा स्वग्ग लोकं नरं नारि अंगा॥
रहट्टं घरी ज्यौं फिरै तीन लोकं। महा दिव्य धुन्नी नवं निगम लोत्रं॥१६२॥
कमाली गुहीरं गुफा फारि नागं। प्रगट्टीय मातंगि मानुष्य भागं॥
रही नष्ष अष्षी सुयं ताप भंजै। महा वट्टराजं दिवं दुर्ग रंजै॥ १६३॥
भयं भीषमं मात बहु पाप षंडै। जमं ज्वाल ज्वालं तमं तेज चंडै॥
रहं रोह रंगी हरं सीस गंगे। महा मोहनी मात दुग्गा उतंगे॥ १६४॥
वरं काल काला जलं स्वेत रूपं। तहां उप्पनी मात आभंग नूपं॥
भई गाम सहं सु हामुह मेतं। उच्यौ नाम गंगा उतंगा विहेतं॥१६५॥
हरद्वार द्वारं कला तू प्रगट्टी। करो मुक्ति मग्गं महा पाप मट्टी॥
तिनं नाम लीनै कियं तोय पीजै। कियं संम्रनं देव संज्यान कीजै॥१६६॥
कियौ गाहि तें पंथ उग्गाहि साजं। तुंही तापिनी तेज तूं तेज राजं॥
तुंही मध्य बारानसी मोह दैनी। कली काल दुष्षं कटन्नं कपैनी॥
छं० ॥ १६७ ॥ रू० ॥ ८३ ॥

दूहा॥ जब लगि रज तन मात की। रहै अंग सो लाइ॥
तब लगि काल न संपजै। क्रम्म पाप सब जाइ॥
छं० ॥ १६८ ॥ रू० ॥ ८४ ॥

---

८३ पाठान्तर-देव। द्रवे। रूपका। पृथ। गुनंत्रे। निकासं। व्रंद। व्रंदारका। मुष। सामुष। जलधी। समद्रं। सामुनो। धरा। चल्ली। नीर नीचं। स्तग। कलेवरं। मधि। वीचिव। मंजने हल्लै। अप सा। जम। दाहनं। जोहै। त्रिपंथी। नाग। घटा ताम। मंगा। महादिव्य। नवं। निगम। महावट्टराजं। पवित्र दुर्गं। भीषम। जालं। महामोहनी। अनूपं। धयौं। समरनं संभ्यान। मोह। मोत। दुषह॥

८४ पाठान्तर-सोलाइ।

गाथा ॥ कंम्मं अघं सब भंजै । दिव्यं करै देह सा रूपं ॥
सुरगं करै सु गामी । अद्दं नाम रसन उच्चारं ॥
छं० ॥ १६९ ॥ रू० ॥ ८५ ॥

मंदाकिनी गंगा का उभरना और गौ का तिरकर निकलना ॥

दूहा ॥ सुनि गंगा सुबयन्न रिष । उभरी आय प्रमान ॥
ताहि तिरंतह नंदिनी । आई तट बिल थान ॥
छं० ॥ १७० ॥ रू० ॥ ८६ ॥

रिष्य सिष्य धाये सु सब । सब । धर कड्ढी तँह गाव ॥
सो कड्ढवि मंदाकिनी । गइ पयाल फिरि ठाव ॥
छं० ॥ १७१ रू० ॥ ८७ ॥

बिल अथाह दिष्यौ सु रिष । चित चिंता परपत्त ॥
को निकसै या माधिगत । गात भयानक षत्त ॥
छं० ॥ १७२ ॥ रू० ॥ ८८ ॥

वशिष्ट ऋषि का उस अथाह बिल बूरने को हिमालय के पास एक पुत्र मांगने जाना ॥

बिअष्षरी ॥ चिंते रिष्षि देखि बिल दुक्कित । उर लग्गी अति चिंत मभिभ्भ चित ॥
पूछवि रिष्य सिष्य कत कामं । लहै न कोइ बुद्धि बल तामं ॥१७३॥
चिंतै ध्यान अप्प रिषि राजं । याहि सुपूरन को थिर काजं ॥
चिंतत रिष्षि ध्यान उर भासं । है सत पुच हेम गिरि जासं ॥१७४॥
एक पुच जाचों तिन पासं । बिल पूरै पूरै उर आसं ॥
क्रम्यौ राज रिषी दिसि उत्तर । देषी मन आनँद दिव्य धर ॥१७५॥
गौ रिषि राज पास गिर राजं । दूष्य अग्ग पति आसन साजं ॥
मैंना सहित आय पग लग्गे । अरघ पाद करि अचवन लग्गे ॥
छं० ॥ १७६ ॥ रू० ८९ ॥

---

८५ पाठान्तर-क्रम । सारूपं । सुगामी ॥

८६ पाठान्तर-सुनयन । तिरंत ॥ ८६ ॥ धाए । कढी । तहां । कढवि । गई । ठांव ॥ ८७ ॥ परयत । मधि । षत ॥ ८८ ॥

८९ पाठान्तर-चिते दुक्कत । कोई । संपूरन । नासं । हेमगिरि । पुत्र एक । पू । पूरे । रिषि । उत्तर । मान । रिषिराज । गिरि राजं । दृष्ये । मेना । पय । लागे ॥

दूहा ॥ सुनि सुवचन गिरि राज कौ । कहि रिषि कारन षात ॥
पुच एक जचं तुमहि । गरित संपूरन गात ॥
छं० ॥ १७७ ॥ रू० ॥ ९० ॥

हिमालय का अपने सब पुत्रों को ऋषि का अभिप्राय कहना ॥

कवित्त ॥ तब सुचिंत गिर ईस । पुच सहे निज सब्बं ॥
कहि कारन षिति षान । अप्प रष्यौ कुल अब्बं ॥
इह सुरिष्षि सुत ब्रह्म । नाम वाचिष्ट महा मति ॥
धर्म पार तप पार । पार स्रुत कर्म परम गति ॥
जचे सु सोइ तुम एक कहुँ । चिंतिय चव कारज्ज रिषि ॥
संब सो वास बिलू उद्धरौ । पद पामौ परमुच अषि ॥
छं० ॥ १७८ ॥ रू० ॥ ९१ ॥

हिमालय के बड़े पुत्र का उत्तर देना कि वह भूमि निषिद्ध है ॥

कवित्त ॥ तब अष्षहि अग्र पुत्त । सुनहु गिरि राज चिंत चिन ॥
पिता वाच रिष काज । कोइ छंडहि सुकम्म चित ॥
उह सु भूमि निषेद । थान जानहु तुम सब्बं ॥
भ्रंम क्रंम अरु देव । सेव जाजन नहि अब्बं ॥
कुच्छित्त देस कारनं विक्रम । तहँ सु केम किज्जै गमन ॥
अप्पियै प्रान मंगै जो रिषि । पै दुष्ट थान थप्पहिं न तन ॥
छं० ॥ १७९ ॥ रू० ॥ ९२ ॥

वशिष्ट का प्रत्युत्तर दे कहना कि वह भूमि बड़ी रम्य है ॥

कवित्त ॥ तब जंपे सुत ब्रह्म । सुनौ गिरि राज पुच सम ॥
इहि सु भौमि बिल थान । रम्य मंडहि सु तप्य छम ॥

९० पाठान्तर-गिरिराज । संपूरन ॥

९१ पाठान्तर-ईसं । रष्षो । महामति । परमगति । कहं.. संव । संवसो । परमुंच ॥

९२ पाठान्तर-गिरिराज । सुक्रम । रूव्व । अब्ब । तहां । कहहां । पै ॥

९३ पाठान्तर-जंपे । सुत्र । गिरिराज । तिय । गंधर्व । मूर्त्तिमान । सज्जे । तिसर । धाम्र । महि ॥

सर्वै देव इहि वास । तिथ्थ सब्बै रिषि सब्बं ॥
विप्र ब्रत्त वर वह्नि । सु गुन गंध्रव सव कब्बं ॥
किन्नरह कंम सुत धर्म धर । मुरनि मान सज्जैनि सिर ॥
हरि ब्रह्म ईस संवास सह । जो आश्रम हि इक्क गिर ॥
कं० ॥ १८० ॥ रू० ॥ ९३ ॥

और वहां आगे बाल्मीकि ऋषित्व को प्राप्त हुए हैं ॥

पद्धरि ॥ रमनीक ठाम वाचिष्ट राज । तहां बसहि देव देवह बिराज ॥
इहि थान पुव्व क्रत युग प्रमान । रिषि कियो तप्प ऊर्जिन विधान ॥१८१॥
बाल्मीक वीर इक वधिक रूप । अति पाप कंम आघात कूप ॥
भंजै सु मग्ग तिन भ्रम्म थान । पायो सु. हरिय दरसन विधान ॥१८२॥
वित संष चक्र गद पदम बाहु । तन स्याम सुभित पीतह प्रवाहु ॥
दिष्ष्यौ सु लच्छी तन रूप भील । कीनी नह तन तिन निमष ढील ॥१८३॥
आयौ सु दिठ्ठ गोबिन्द वीर । जानी न पुव्व भ्रम्मह सरीरं ॥
छिति दिष्षि दिठ्ठ कामह करूर । बिंध्यो सु पाप मथ्थां सन्नूर ॥ १८४॥
तव आय रिष्ष उपदेस दीन । किहि काज इहां यह कंम कीन ॥
भगनी रु बंध तिय मात पुत्त । बंटहि कि पार पापह सजुत्त ॥ १८५ ॥
तिहि जाइ कह्यौ वर भील मान । बंच्यौ न पार किन अंग थान ॥
लग्यौ चरन्न कर धनुष तोरि । आघात घात बानी सजोरि ॥ १८६ ॥
व्याघात नाम सों बधिक थान । भ्रम भम्यौ इक्क इक्कह निधान ॥ *
कं० ॥१८७॥ रू० ॥ ९४ ॥

गाथा ॥ यों कहियं रिषि राजं । तुम कोइ दिवस भ्रमन करि अथ्थं ॥
फुनि हम दरसन प्रायं । सथ्थं गुर मंत्र दे कानं ॥
कं० ॥ १३८ ॥ रू० ॥ ९५ ॥

---

९४ पाठान्तर–जु । धर्म । दर्सन । लछि । वीर । धर्मह । धरमह । विंढ्यौ । मथांस । भूर । रिषि । इहां । रहां । क्रम । त्रिय । पुत । संजुत । चरन । तोरी । भम्यो । इक । वृछ ।
* यह पंक्ति कर्नैल टाड साहब वाली पुस्तक में नहीं है ॥
९५ पाठान्तर–कोई । भ्रमं । ससथ्थ । मरा । मरा । गहिय । भट्टै । अब । अबयो ॥